अभिशाप

—इस संग्रह की अनेक कहानियां अंग्रेजी में अनूदित हो कर इसके लेखक का परिचय हिन्दी जगत से बाहर पहुंचा चुकी हैं। इस संग्रह की 'दास-धर्म' 'आदमी का बच्चा' 'शम्बूक' आदि कहानियां दलित वर्ग की अदम्य और युग परिवर्तनकारी पुकार है।

विप्लव प्रकाशन संख्या—११

अभिशाप

यशपाल

(चतुर्थ संस्करण)

प्रकाशक
विप्लव कार्यालय, लखनऊ

मार्च १९५६]

मूल्य २॥)

प्रकाशक :—
विप्लव कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
साथी प्रेस
लखनऊ

समर्पण

कर्मफल के अभिशाप में हमारा विश्वास परिस्थितियों से संघर्ष करने के उत्साह को निर्जीव कर हमे सजीव मृतक बनाये है ।

...... अजाने अपराधों के दण्ड को संतोष से भोगनेवाले समाज, धन्य है तेरा धैर्य !

क्या कभी तू अनजाने की अपेक्षा जाने हुये में और अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष में विश्वास कर जीवन की इच्छा और अधिकार के लिये व्याकुल होगा ?

इसी आशा में असंतोष का यह निश्वास तुझे अर्पित करता हूँ ।

यशपाल

क्रम



दास धर्म

वर्षा के आरम्भ में आन्द्रेकस जम्बूद्वीप के वाणिज्य-प्रवास से लौटा। दीमा की अवस्था देख उसका हृदय मुँह को आने लगा। दीमा का गुलाब का सा खिला कोमल मुख, विरह में वृक्ष से झर कर कुम्हला गये सेब की भाँति पीला पड़कर त्वचा सिकुड़ गई थी। नेत्र धँस कर दो सूखे घावों जैसे जान पड़ते थे। यदि आन्द्रेकस कुछ और मास विलम्ब से आता तो सम्भवतः पत्नी के स्थान पर उसे दीमा की समाधि का ही आलिंगन कर आँसू बहाने पड़ते।

मिलन के आँसू बहाती दीमा का सिर अपने हृदय पर दबा आन्द्रेकस ने निश्चय से कहा था—मुझे नहीं चाहिये भारत का धन। तुम्हें बिलखती छोड़ अब मैं कहीं न जाऊँगा। तुम्हीं ही मेरा धन हो। तुम्हें पाकर मैं सब सम्पदा पर लात मार सकता हूँ। तुम्हें प्रसन्न देखने के लिये यदि मुझे बावेरू के बाजारों और गलियों में सिर पर बोझ उठाने की जीविका करनी पड़े या निकृष्ट किसान भी बनना पड़े तो वह भी मुझे स्वीकार है।

आन्द्रेकस और दीमा के दिन और रातें प्रेम-परिणाय में घुलकर बीतते न जान पड़े। दीमा फिर पनप गई। उसके रक्तिम लोल ओठों पर हास्य, आयत नील लोचनों में मादक डोरे और गालों पर इंगुर लौट आया। एक संध्या आन्द्रेकस ने भारत के व्यापार-प्रवास से लाये बंगदेश के झीने स्वर्ण-खचित वस्त्रों से दीमा को सजा, पाटली पुत्र के जौहरी से खरीदा मरकत-मणियों का

हार उसके गले में पहनाया। कान्यकुब्ज के अनमोल इत्र से उसे सुवासित किया। हाथी दाँत में मढ़ा दर्पण उसके सम्मुख कर वह बोला—देखो अपनी छवि, इस समय बावेरू, मिश्र और सीरिया के चक्रवर्ती सम्राट आन्तिओकस की पटरानी भी तुम से ईर्षा कर सकती है।

दीमा अपने नखों की ओर देखती चुप रह गई। उसकी ठोढ़ी छूकर आन्द्रेकस ने पूछा—"क्यों प्रिये, चुप क्यों हो?" पति के समीप आने पर दीमा ने अपनी बाँह उसके गले में डाल, उसकी दाढ़ी के पिंगल केशों में अपने सिर के केश मिला उत्तर दिया—"हाँ इस समय मैं किसी भी पटरानी से अधिक सुखी हूँ, परन्तु यह वस्त्र-भूषण; इनके कारण मुझे कितना विरह सहना पड़ा?" आन्द्रेकस ने दीमा को आलिंगन में ले व्यापार-प्रवास के लिये फिर समुद्र यात्रा न करने का निश्चय दोहराया।

× × ×

एक और वर्षाऋतु बीत गई। भूमध्यसागर के तटवर्ती नगरों से बहुमूल्य वाणिज्य आ-आकर बावेरू के समृद्ध बाज़ारों में भरने लगा। महावणिक मरासस की द्रव्यशालाएँ बहुमूल्य पदार्थों से अट गईं। अपने चतुर पुत्र को सम्बोधन कर मरासस ने कहा—'पुत्र, जिस वाणिज्य की बिक्री समयपर नहीं हो जाती उसके मूल्य को समय खा जाता है। वाणिज्य की सार्थकता ग्राहक के हाथ पहुँच जाने में ही है अन्यथा वह व्यापारी के लिये केवल चिन्ता और हानि का ही कारण बनता है। हमारे संग्रहालय वाणिज्य से पूर्ण है। गतवर्ष समुद्रयात्रा से लौटी हमारी नावों की उचित व्यवस्था हो चुकी है। सीरिया के व्यापारियों के नाविक सार्थ (काफ़िले) यात्रा आरम्भ कर रहे हैं, तुम भी समय नष्ट न कर यात्रा के लिये तैयार हो जाओ। वणिक का धर्म है, प्रमाद रहित हो अपने द्रव्य को बढ़ाना। जो द्रव्य बढ़ता नहीं, वह क्षय हो जाता है। सामुद्रिक वणिक का घर समुद्र में बहती नाव ही है और यात्रा ही उसका जीवन है। तुम्हारी आयु तक पहुँचते मैं चार बार जम्बू द्वीप की यात्रा कर चुका था, तीन बार समुद्र मार्ग से और एक बार हिन्दुकश लांघ, स्थल मार्ग से। यौवन ही व्यवसाय का समय है। बावेरू, सीरिया और मिश्र के सम्भ्रान्त वणिक युवकों के साथ तुम भी व्यवसाय-यात्रा में जाओ। भगवान् ज़ीयस तुम्हारा कल्याण करेंगे।

पिता के आदेश को सुन आन्द्रेकस मन ही मन विह्वल हो उठा। पिछली यात्रा से लौटकर देखा दीमा का विरह दुख से निर्जीव प्रायः मुख, उसकी स्मृति में नाच गया। फिर से दूर यात्रा में जा, दीमा को दुखी न करने का अपना प्रण भी याद आया, परन्तु पौरुष, आत्म-सम्मान और कर्तव्य के विचार ने उसकी जिह्वा पर ताला लगा दिया। पिता की आज्ञा उसने स्वीकार कर ली।

×　　　　　　　　×　　　　　　　　×

दीमा सारी रात रोती रही। आन्द्रेकस उसे गोद में लिये बैठा रहा। दीमा की विह्वलता से उसका हृदय पिघल, कंठ रुंध गया। एक भी शब्द वह बोल न सका। ओठ दबा अपने को वश में रखने का प्रयत्न उसने किया। फिर भी गुलाबी हो गये नेत्रों से दो चार बूंद आँसू टपक कर पिंगल मूछों की नोक और छोटी तिकोनी दाढ़ी के केशों के अन्त में झूल गये। दीमा के मुंदे नेत्रों से अविरल धारा बह रही थी। आन्द्रेकस की गोद और कंधे के वस्त्र उस से भीग गये। पलंग पर बिछा, स्वर्ण तारों से खचित, सुदूर भारत से आया लाल वस्त्र जहाँ तहाँ आँसुओं से भीग गया। दीमा का नीरव क्रन्दन न थमा। अपने आलिंगन में उसे समेटे, ओठ दबाये, आन्द्रेकस का हृदय भी रोता रहा। दोनों की विवश विह्वलता देख दीपाधार पर जलती दीपशिखा स्तब्ध और निश्चल थी।

सूर्य की प्रथम किरणों के प्रकाश में तावेरू के सामुद्रिक महानाविक मरासस के विशाल प्रासाद पर शिलाओं से गढ़े गोल कंगूरे सुनहरी हो गये। सूर्य की कुशल किरणें गवाक्षों से अन्तःपुर के कक्षों में झाँकने लगीं। आन्द्रेकस से रहा न गया। विह्वल और शिथिल दीमा का आँसुओं से भीगा मुख अपने कंधे से उठा, उसकी घनी पलकों में भरे आँसू चूस, उसने कहा—"मेरी दीमा, बस......इस समुद्र यात्रा में मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा....धैर्य रखो।"

दीमा का अविरल मूक क्रन्दन सिसकियों में बदल गया। वह अपने नेत्र पोंछने लगी। उसे अपने आलिंगन में और निकट समेट, ओठों से लगा, आन्द्रेकस ने कहा—"अब क्यों रोती हो प्रिये? वचन देता हूँ, तुम्हें साथ ले चलूंगा। भद्रवंश की अनेक रमणियाँ अपने पतियों के साथ समुद्र-यात्रा में जाती हैं। महासेनानायक सीकस का तो जन्म ही नील नद के तल पर नौका में हुआ था। चिन्ता है, केवल जल दस्युओं की।"

सुगन्धित दीपक के रक्तिम प्रकाश और झरोखे से झाँकती सूर्य की किरणों के मिश्रण में दीमा के रो-रोकर क्लान्त पीले पड़ गये मुखड़े पर मुस्कान और आँसुओं का मिश्रण झलक गया। अन्द्रेकस के गले में अपने बाहुपाश को शिथिल कर उसने कहा—"अब जाने दो न प्रिय; घाम फैल रहा है....दासी आती होगी।"

× × ×

बावेरू, सीरिया और मिश्र के यवन महावणिकों का सामुद्रिक सार्थ अतलांतक महासागर के नीले तल पर श्वेत वस्त्रों की आकृतिकाओं के समान ऊँचे पाल उड़ाता, दक्षिण दिशा की ओर चला जा रहा था। नावों और पोतों का वह समुदाय अपनी विशालता और विस्तार के कारण नगर की भाँति स्थिर जान पड़ता था। समुद्र की नियमित वायु की थपकियों से हिलोरें लेती इस नगर की नीली भूमि सम्पूर्ण नगर को नियमित गति से थिरकाती रहती। इस गतिमान नगर में नागरिक जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकतायें और विलासिता प्राप्त थी। समृद्ध वणिकों की सेवा के लिये पोतों पर दास और दासियाँ थीं, स्वादु भोजन और पान का प्रबन्ध था, आलस्य और विरक्ति को दूर रखने के लिये वीणा, मृदंग और नर्तकी के नूपुर की ध्वनि अविराम रूप से गूंजती रहती। सार्थ मगध-साम्राज्य के विलासी नागरिकों के लिये मध्य-एशिया, यूनान और रोम की विलास सामग्री लिये जा रहा था। मध्य-एशिया, यूनान और रोम के ऐश्वर्य्यशालियों के लिये भारत के अमूल्य वस्त्र, मणि-माणिक्य, और मसाले क्रय करने के लिये उनके पोतों में अमित स्वर्ण भरा था। उन्हें जल दस्युओं की आशंका थी इसलिये सशस्त्र सैनिकों से भरी नौकाएँ इस गतिमान समृद्ध नगर को घेर कर चल रही थीं। पर्याप्त धन देकर इन वणिकों ने प्रबल, प्रतापी सम्राट आन्तिओकस की जल सेना की सेवा अपनी रक्षा के लिये क्रय कर ली थी।

महावणिक मरासस के पुत्र युवा आन्द्रेकस और उसकी पत्नी दीमा के पोत कक्ष विशेष रूप से विलास की सुख-सामग्री से पूर्ण थे। आन्द्रेकस सार्थ के सम्मिलित प्रमोद से थक कर, दीमा के उत्तेजक माधुर्य से शान्ति और विश्राम देने वाले आलिंगन में, उस के हाथ से रोम और एथेन्स की सुरा के प्यालों से शैथिल्य जनित प्यास बुझाता। इस सुरा से कहीं अधिक मादक

दीमा के ओठों से घूंट भरता वह दीर्घ यात्रा को पार किये जा रहा था! आत्म-विस्मृति के इन साधनों की भी उसे आवश्यकता न थी। अतलांतक महासागर की ही भाँति दीमा के अतल और निस्सीम नयनों में वह स्वयं ही खोया था। अनेक प्रकार के जलवायु, फल-फूल, मनुष्य और पशु-पक्षियों को देख दीमा विस्मय और आल्हाद से किलक उठती।

यवन सामुद्रिक वणिकों के सार्थ ने सिंहल-द्वीप में मुक्ताओं का भण्डार क्रय कर भारत के पूर्वी सागर में प्रवेश किया। सैनिक और नाविक दूने सतर्क रहने लगे। उस समय कलिंगपत्तन से ले गंगा सागर तक भारत का पूर्वीय समुद्र-तट, चक्रवर्ती दुर्दान्त सीमुक सातवाहन से अभय प्राप्त, विक्रान्त जल दस्युओं के आतंक से यवन सामुद्रिक वणिकों के लिये श्मशान की भाँति भयावह हो रहा था। इन दस्युओं द्वारा ध्वंस नावों के अंजर-पंजर और मस्तूलों से भारत का पूर्वी तट बिछ गया। गौरवर्ण पिंगल केश, स्वस्थ और बलिष्ठ यवन दास दासियाँ आंध्र के कृष्ण वर्ण नागरिकों की विशेष रुचि की वस्तु बन गये थे। राज प्रासाद और सामन्तों की दृष्टि में इन दास-दासियों का विशेष मूल्य था। स्वदेश और स्वजन से सदा के लिये बिछुड़, दस्युओं से मोल ले लेने वाले अपने स्वामी के, जिसकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता पर दासों का जीवन और मृत्यु निर्भर थी, यह दास विशेष विश्वास-पात्र बन जाते। इन दासों के विषय में, समीपवर्ती प्रतिस्पर्धी और सामन्तों के गुप्तचर होने की भी आशंका न थी।

यवनों का नाविक सार्थ तट से पर्याप्त दूरी पर, विशेष सतर्क भाव से गंगासागर के संगम की ओर बढ़ता जा रहा था। आन्द्रेकस धन के मूल्य में चिन्ता का उत्तरदायित्व सैनिकों और नाविकों के कन्धे पर छोड़, प्रमोद में मग्न था। सुरा और प्रणय की मधुर मादकता में रात्रि के दो पहर व्यतीत कर वह मधुर निद्रा में आत्म-विस्मृत हो जाता। भूमध्य के दो पहर तपे सूर्य की प्रखर किरणें भी उसकी निद्रा भंग करने में असफल रह जातीं। उस निद्रा को समाप्त कर पाता उस से भी अधिक सुखद, दीमा के सुवासित करों का स्पर्श और उस से अधिक दीमा के मधुर; अस्फुट प्रिय सम्बोधन।

ऊषा की लाली से रक्तिम पूर्व दिशा में शनैः शनैः सूर्य का नूत क्षितिज से उठ रहा था। यवनों के नाविक सार्थ के विशाल, शुभ्र पाल सामर्थ्य भर अनुकूल वायु उदरस्थ कर, सागर के शान्त तल पर गम्भीर, मन्थर गति से

व्यूह-बद्ध विराट राजहंसों के समान उत्तर की ओर बढ़ते जा रहे थे। नाविक और सैनिक सूर्य के दीप्त वृत को नमस्कार कर भगवान जीयस की कृपा के लिये धन्यवाद दे, मंगल की प्रार्थना कर रहे थे। तने हुए पाल सहसा आघात से नगाड़ों की भाँति बज उठे। नाविकों ने देखा—पश्चिम दिशा से आते बाणों की बौछार ने पालों को छेद दिया है। नाविक-सार्थ में युद्ध का तूर्य बज उठा।

चौकसी के लिए नियुक्त श्येन-दृष्टि नाविकों और सैनिकों ने सूर्योदय से पूर्व ही पश्चिम दिशा में जल से मिली हुई एक भूरार-नीली रेखा की ओर सेनापति का ध्यान आकर्षित किया था। अनेक बार ध्यान देने पर भी उस रेखा को गतिहीन पा सेनापति ने उसे चट्टान-मात्र समझ उस की चिन्ता छोड़ दी थी। वह रेखा जलदस्यु नौकाओं की पंक्ति ही थी।

सेनापति की आज्ञा से सभी पाल तानकर, बेड़े की गति बढ़ा, शत्रु की पहुँच से दूर हो जाने का यत्न किया गया! बाणों की बढ़ती संख्या ने इस चेष्टा की विफलता प्रमाणित करदी। सार्थ के सैनिकों को अपनी शक्ति पर विश्वास था। क्षुद्र शत्रु अभी उनके कृपाणों की पहुँच से दूर था। सेनापति ने आज्ञा दी, आत्मरक्षा के उद्देश्य से व्यूह रचना कर, सब पाल गिरा, बेड़े को स्थिर कर दिया जाए।

यवन धनुष-धारियों के लक्ष्य से बचने के लिए दस्यु नौकाएँ एक दूसरे से दूर-दूर अर्धवृत्त में फैलती चली आ रही थीं। सभी नौकाओं के लिए एक ही लक्ष्य था, यवन सार्थ। परन्तु सार्थ के लक्ष्य बेधियों के लिए छोटी-छोटी नौकाओं के रूप में सौ से अधिक अस्थिर लक्ष्य थे। यवन योद्धा ढाल तलवार ले दस्युओं के समीप आने की प्रतीक्षा, उन के बाणों को सहते हुए, विकलता में कर रहे थे। आन्द्रेकस अपनी निद्रा से जाग स्वयम् कृपाण हाथ में ले सेनापति के साथ युद्ध संचालन के लिए प्रस्तुत था। दीमा को उसने सुरक्षित स्थान में बिठा दिया।

समीप आने पर दस्युओं ने धनुषों पर जलते हुये मशाल चढ़ा यवन पोतों के पालों पर फेंकने आरम्भ किये। बेड़े में आग लग जाने से हाहाकार मच गया। दस्युओं की नौकाएँ मधुमक्खियों की भाँति घिर आईं और वे बेड़े पर टूट पड़े। अनेक नाविक, सैनिक, व्यापारी और उनके दास आहत हुए और

भय से सुध-बुध खो जल में गिर पड़े। दस्युओं ने पराजित यवनों को निशस्त्र कर स्त्री-पुरुषों को बन्दी बना लिया। सशस्त्र दस्युओं के नियंत्रण में यवन नाविक बचे हुए बेड़े को आन्ध्र-तट की ओर ले चले।

× × ×

लूट का स्वर्ण, बहुमूल्य द्रव्य और बन्दी दास-दासियों को ले दस्युदल आन्ध्र के नगरों में पहुँचे। धन को संचय करने की प्रवृत्ति से हीन, आवश्यकता से अधिक धन पाये, दस्यु दल जहाँ पहुँचते मदिरालयों के स्वामी, वस्त्राभूषणों के विक्रेता और वेश्याएँ लालायित नेत्रों और गद्‌गद् स्वर से उन का स्वागत करतीं। चतुर व्यापारी उन्मत्त दस्युओं से धनी बन, लूट में छीने उनके द्रव्य को सौदे के रूप में हथिया लेते और द्रव्यों के मूल्य में दिये धन को, मदिरा और दूसरे भोग्य-पदार्थों के मूल्य में लौटा लेते। कंगाल दस्यु फिर कंगाल बन, जीविका के लिए साहसिक कार्य की खोज में समुद्रतट की ओर चल देते। यवन दास-दासियाँ विशेष आकर्षण के पण्य थे। शारीरिक श्रम से घृणा करने वाले और वृद्ध नागरिक इन बलिष्ट दासों की खोज में रहते। राजवंशी और सामन्त कहीं किसी दूसरे आश्रय की आशा न कर सकने वाले इन दासों को, जिनका अपने स्वामी के अतिरिक्त कोई न था, प्रजा से जिन का कोई सम्पर्क न था, अपनी शक्ति समझते थे। वृद्ध वेश्याएँ गौर वर्ण; पिंगल केश यवनियों के शरीर से कौतुहलपूर्ण कामुकता का भरपूर मूल्य पाने की आशा करती थीं। बाजार में इन बन्दियों के आने पर उत्सव का-सा समारोह हो जाता।

आन्ध्रपति महाराज सीमुक सातवाहन के अभयदान से ही दस्युदल का अस्तित्व था। उनकी इस कृपा के प्रति कृतज्ञता से और राजभक्ति के कर्तव्य स्वरूप द्रव्यों और दासों का प्रथम प्रदर्शन राज-प्रासाद में होता। महाराज ने सिंहल के वृहद आकार मुक्ता चुन लिये। उन की दृष्टि दासियों और दासों की पंक्तियों की ओर गई।

दीमा दासियों की पंक्ति में बैठी थी। उस के मूल्यवान वस्त्र कुचले जाकर विश्री हो गये थे। उस के नयनों की मादकता कातरता में, और मुख की त्वचा का ईंगुर भरा लावण्य भयार्त की उदासी के पीलेपन में बदल गया था। दस्युओं ने उस के केशों की सुनहली आभा दिखाने के लिये वेणी खोल कर

को कंधों पर डाल दिया। उसके वक्ष पर त्वचा की कमनीयता दिखाने के लिये उसके कंचुकी का एक भाग फाड़ दिया गया। महाराज की दृष्टि उसकी ओर जाती देख, हाथ में चमड़े का गाँठदार कोड़ा थामे, दस्यु ने उस को मुस्कराने का संकेत किया। मुस्कराने का उस का प्रयास विफल रहा। महाराज की दृष्टि ठहर गई। दूसरी कुछ बन्दिनियों के साथ दीमा को महाराज की सेवा के लिये निर्वाचित कर लिया गया।

दासियों के पश्चात् महाराज की शिविका (पालकी) दासों की पंक्ति की ओर गई। युद्ध में माथे पर लगे घाव से रक्त बह आन्द्रेकस के सिर के केश और दाढ़ी-मूँछ अब भी नारियल की जटा की भाँति चिपक रहे थे। एक ओर खड़ी दीमा भगवान ज़ीयस के चरणों में प्रार्थना कर रही थी—उस का पति भी राज सेवा के लिये निर्वाचित हो जाय। जीवन भर के लिये वे एक दूसरे से खो न जाँय।

दीमा की कातर याचना भगवान् ज़ीयस को स्वीकार हुई। महाराज की मर्मज्ञ दृष्टि ने आन्द्रेकस में विशेषता पाई और दूसरे अन्य सुस्वरूप दासों के साथ उसे भी राजकीय सेवा में ले लिया गया।

कोमलांगी और चतुर दीमा को अन्तःपुर में राजमहिषी के प्रसाधन कार्य में नियुक्त किया गया। कला मर्मज्ञ महाराज ने दीमा के लोल-लावण्य और कण्ठ-माधुर्य का आभास पा, अवसाद के क्षणों का उपचार करने की सेवा के लिये, उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा दी जाने की आज्ञा दी।

आन्द्रेकस ने विधाता की रेखा को अटल समझ अपने कर्तव्य को निबाहा। अपनी तत्परता और प्रतिभा से शीघ्र ही वह कठोर शारीरिक श्रम से मुक्त हो दासों का नियामक हो गया। स्वामी को ही 'एकमेव देव' समझ उसने अक्षुण्ण स्वामिभक्ति की शपथ ली, वह महाराज का अत्यन्त अंतरंग अंगरक्षक नियत हो गया।

× × ×

चैत की पूर्ण ज्योत्सना में स्फटिक मण्डित प्रांगण में श्वेत पुष्पों का वितान तना था। शुभ्र पीठिका पर शुभ्र उपाधानों के सहारे, शुभ्र वस्त्र धारण किये, मुक्ता-माला पहने महाराज मेधवर्ण सामुक सातवाहन बैठे थे। दो यवनियाँ

दायें-बायें श्वेत चँवर डुला रही थीं। महाराज की पीठ पीछे अंग-रक्षक दास आन्द्रेकस सेवा में प्रस्तुत था। सम्मुख, बीच का स्थान छोड़ अन्तरंग के सामन्त आसनों पर मण्डलाकार बैठे थे।

अपनी शिक्षा समाप्त कर दीमा महाराज की प्रथम सेवा के लिये प्रस्तुत हुई। वह चाँदी के सूक्ष्म तारों से खिंचे महीन वस्त्र का लहँगा और कंचुकी पहने थी। उसके आभूषण मुक्ता और श्वेत फूलों के थे। उसके केशों, कण्ठ, कलाइयों और कटि में पुष्प मालायें, वलय, वेणी और मेखला के रूप में लिपटी थीं। कोमल पदों से चाँदी के नूपुरों की ताल देते हुये वह महाराज के सम्मुख प्रस्तुत हुई। प्रांगण की स्फटिक शिला पर मस्तक रख उसने 'एकमेव स्वामी' महाराज को दण्डवत किया।

अवसर देख वीणा और मृदंग लय से बज उठे। दासी के कर्तव्य में दीक्षित होने के पश्चात् इस समय प्रथम बार दीमा ने आन्द्रेकस को देखा। उस का मन हिलोर उठा। आँख भर अपने प्रणयी को देख दीमा ने नेत्र मूँद लिये। वाद्य की लय पर उसका शरीर गति करने लगा। तन्मय हो वह नाचने लगी, अपने आपको निछावर कर देने के लिये।

दर्शक स्तब्ध थे। महाराज मंत्रमुग्ध भुजंग की भाँति निश्चेष्ट और स्थिर रह गये। दास आन्द्रेकस के नेत्र भीग गये। अपनी प्रसन्नता और कृपा प्रकट करने के लिये महाराज ने साधुवाद दे, आदर के लिये नर्तकी को एक चषक सुरा सेवा में प्रस्तुत करने का अवसर दिया। विनयावनत दीमा ने सुरा-पात्र प्रस्तुत किया। चषक रिक्त कर महाराज ने नर्तकी को और नाचने की आज्ञा दी। दास आन्द्रेकस मूर्तिवत देखता रहा।

नृत्य के पश्चात सुरा, सुरा के पश्चात नृत्य। महाराज झूमने लगे।

आज्ञा पा नर्तकी पुनः सुरा-पूर्ण चषक ले प्रस्तुत हुई। महाराज ने प्रसन्न हो नर्तकी की बाँह थाम उसे अंक में ले लिया।

सामन्त लोग शिष्टाचार से मस्तक नवा अनुपस्थित हो गये। वादक और शरीर रक्षक परोक्ष में चले गये। केवल कर्तव्य-नियुक्त अन्तरंग अंगरक्षक दास आन्द्रेकस अपने स्थान पर निश्चल रहा।

महाराज सुरा और सौन्दर्य की मादकता से पूर्ण तृप्ति की चेष्टा में आत्म-विस्मृत हो गये। दासी नर्तकी उनके अंक में तृप्ति का साधन थी। उसका कर्तव्य और धर्म था, महाराज की इच्छा।

महाराज शिथिल अंग हो निद्रा में बेसुध हो गये। मर्दित शरीर, मर्दित वस्त्र दासी उनके बहुपाश से मुक्त हो ग्रीवा झुकाये राजपीठ के समीप खड़ी हो गई। अवसाद-भरी दृष्टि उसने दास आन्द्रेकस के भीगे नेत्रों में डाली और सिर झुका लिया।

आन्द्रेकस संज्ञाहीन-सा आगे बढ़ा। दोनों के नेत्रों से आंसू बह चले। आन्द्रेकस ने दीमा को अपने आलिंगन में बाँध लिया। दोनों आवेश में मूढ़ हो गये।

निद्रा में बेसुध महाराज ने पीठिका पर करवट ली और स्फटिक शिला मण्डित प्रांगण पर गिर पड़े। सचेत हो उन्होंने दास और दासी को आलिंगनपाश में देखा। क्रोध में वे चीत्कार कर उठे।

लताओं की ओट से सशस्त्र, शरीर-रक्षक दास निकल आये। दीमा और आन्द्रेकस के शरीर तुरंत रस्सियों में बंध गये। दास की स्पर्धा! स्वामी की भोग्य नारी के स्पर्श की!

क्रोध से महाराज का हाथ कृपाण की मूठ पर गया, परन्तु वे चुप रह गये।....इतने वीभत्स अनाचार का दण्ड क्षणिक यातना की मृत्यु से? महा-पातक अपराधियों को विचार के लिये पुनः उपस्थित करने की आज्ञा दे महाराज क्षुब्ध मन को स्थिर करने के लिये अन्तःपुर में चले गये।

कलिंग-अधिपति, धर्म रक्षक, महाराज सातवाहन ने धर्माचार्य, नीति-विज्ञ, न्याय-मंत्री से जिज्ञासा की—ऐसे घोर अपराध का दण्ड क्या होना चाहिये?

नीति और धर्म का विचार कर शास्त्रज्ञ मंत्री ने उत्तर दिया—ऐसे महा-पातक विश्वासघात का दण्ड है, अंग-अंग हाथी के पांव तले कुचल कर मृत्यु!

दारुण यंत्रणा से मृत्यु का दण्ड सुन दीमा सिर झुकाये खड़ी थी। दयालु महाराज के क्रोध का आवेश न्यून हो गया था। उनके मस्तिष्क में गत रात्रि के उन्माद की स्मृति की क्षीण-सी रेखा चमक गई। आर्द्र स्वर में उन्होंने कृपा की—"दासी, मृत्यु से पूर्व क्या प्रार्थना करना चाहती है?"

महाराज की करुणा से उत्साहित हो दीमा ने कम्पित, विनीत स्वर में प्रार्थना की—"धर्म रक्षक महाराज ! यवनों के देश में मृतक शरीर चिता पर भस्म न कर पृथ्वी में गाड़ दिये जाते हैं। हम दोनों अपने देश में पति-पत्नी थे। मृत्यु के पश्चात हमारे शरीरों को एक साथ समाधि दी जाने की दया हो। हम लोग स्वर्ग में फिर एक दूसरे को पा सकें।"

महाराज ने सम्मति के लिये शास्त्रज्ञ मंत्री की ओर देखा। मंत्री ने उत्तर दिया—"यह केवल पापमूलक अनाचार की प्रार्थना है। अन्नदाता, स्वामी के प्रति विश्वासघात कर स्वर्ग की आशा करना अधर्म है। दास का केवल एक धर्म है, प्रभु सेवा !"

दासों को अपने धर्म के प्रति सचेत करने के लिये मत्तगज के पाँव तले कुचल गये दीमा और आन्द्रे कस के क्षत-विक्षित शरीर राजप्रासाद के द्वार पर स्तम्भों से लटका दिये गये।



अभिशप्त

अमीनुद्दौला पार्क में प्रायः ही प्रदर्शनी, मेला या जलसा कुछ न कुछ हुआ ही करता है। मेले-ठेले के धक्के से परेशान हुए बिना तमाशे की सैर करनी हो तो किनारे के किसी दुमंज़िले मकान के बरामदे से हो सकती है। इस विचार से इन जाड़ों में संध्या-भोजन के बाद, मुंह में पान या शुक्लाजी के बच्चों के लिये जेब में लैमनड्राप ले, छड़ी घुमाता हुआ मैं प्रायः शुक्ला जी के बरामदे में जा बैठता।

शुक्लाजी स्वयं जैसे बैठकबाज़ और हँसोड़ हैं, उनकी श्रीमती जी भी वैसी ही मिलनसार हैं। दिनभर कारोबार की चख-चख के बाद संध्या समय घण्टे-दो-घण्टे सभ्य और सुसंस्कृत लोगों के साथ बैठ बातचीत कर लेने से एक संतोष-सा हो जाता है।

शुक्ला जी के दोनो बच्चे-लल्लू और सविता मेरे कदमों की आहट ज़ीने से भांप जाते हैं। उन्हों ने आँगन में ही घेर लिया। जेब खाली करते हुए पुकारा—"शुक्लाजी !"

आँगन के सामने वाले कमरे के परली ओर, बरामदे से झाँक मिसेज़ शुक्ला ने उत्तर दिया—"आइये न !......कैसे पुकार रहे हैं; जैसे बिलकुल अपरिचित हों !"

बिजली की हजारों बत्तियों के प्रकाश में, नीचे पार्क में प्रदर्शनी का मेला खूब भर रहा था। भीड़ अधिक थी। प्रसंग छेड़ने के अभिप्राय से मुस्कराकर

मैंने पूछा—"इतनी भीड़; क्या आज फिर जालौन और फतेहपुर में आतिश-बाजी का मुकाबिला है ?"

बात रखने के लिये मुस्कराहट में सहयोग दे मिसेज़ शुक्ला ने कहा—"कुछ होगा ही, लोगों की जेब के पैसे खींचने के लिये कुछ न कुछ बहाना चाहिये।"

अपने अभ्यास के विरुद्ध, ऊँचे स्वर में हँसकर शुक्लाजी ने कुछ न कहा। वह किरमिच की आराम कुर्सी पर पाँव फैलाये बैठे थे, बैठे रहे। दाँयें हाथ की उँगलियों में ठोढ़ी को टिकाये, पीठ पीछे की पटिया पर सिर धरे, वह गम्भीर मुद्रा से जगमगाते प्रकाश में बावली हो रही भीड़ की ओर देखते रहे। दृष्टि दूसरी ओर रहने पर भी मेरे कुर्सी पर बैठ जाने की प्रतीक्षा में थे।

"क्या जमाना आ गया........" चप्पल पर रखे अपने पांव हिलाते हुए वह बोले। शुक्लाजी की इस भूमिका में सहयोग देने के लिये श्रीमती जी के चेहरे पर से, मेरे स्वागत के लिये क्षण भर को आयी मुस्कराहट विलीन हो गई—"अरे जाने क्या होने वाला है दुनिया में...." एक गहरी सांस खींच उन्होंने गर्दन घुमा ली।

इस प्रस्ताव से पर्याप्त गम्भीरता और उत्सुकता का वातावरण तैयार हो जाने पर, धीमे-धीमे शुक्लाजी ने आरम्भ किया—"भाई, इन समयों में जो न हो जाय, वही थोड़ा है। हाँ...यह जो गूँगे नवाब का अहाता है; जहाँ बमपुलिस बनी है; वहीं, उसके साथ लगी हुई-सी कोठरियां हैं। वहां पिछली रात खून हो गया खून। खून किया किसने ?.... ......पाँच साल के बच्चे ने !"—कुर्सी पर लेटे से वह उठ बैठे। यह अत्यन्त विस्मयजनक समाचार सुनाने के प्रयत्न में उनकी आँखें स्वयं विस्मय से फैल गईं, "....क्या विश्वास कर सकोगे ?"

"पाँच बरस के बच्चे ने खून तो क्या किया होगा"....मैंने विस्मय में सहयोग दिया, "कोई दुर्घटना बेचारे से हो गयी होगी !"........लड़के छत पर खेल रहे होंगे। यह पतंगबाज़ी........धक्का दे दिया हो ?"

समर्थन की आशा से मैंने श्रीमती शुक्ला की ओर देखा। उनके मुख पर विषाद की छाया गहरी हो गयी थी। कुर्सी की पीठ पर रखे अपने हाथ पर गाल टिका उन्होंने एक और दीर्घ निश्वास लिया।

उत्तेजना में शुक्ला जी कुछ आगे झुक आये—"क्या कह रहे हो ?"—दोनों हाथ के पंजों को बाँध, संकेत से वे बोले, "खून ! गला घोंटकर खून ! ……पाँच बरस के बच्चे ने ।"

आश्चर्य से फैली मेरी आँखों ने पूछा—"कैसे ?"

"दीवार की ओर जो सब से पीछे कोठरी है, वहीं एक झल्लीवाला रहता है, ज्वाला ! जात का अहीर । उसके एक पाँच बरस का लड़का और तीन बरस की लड़की थी । झल्ली ढोने वाला क्या कमा लेगा ? कभी चार-छः, कभी दो ही आने । अरे, अमीनाबाद, फतेहगंज से बोझ उठाकर आप आधा मील या मील भर ले जाइयेगा, दो-चार, हद छः पैसे दे दीजियेगा ? उसकी अहीरन फतेगंज में दाल दलने चली जाती । दो-तीन आने, आधेक सेर अनाज ले आती । किसी तरह दोनों बच्चों को पाल रहे थे । समय जैसे हैं, जानते ही हो । रुपये का बारह-चौदह सेर मिलता था सो अब अढ़ाई-तीन सेर मिलता है; वह भी अन्न नहीं, कुअन्न । किसी तरह रूखे-सूखे बच्चों का पेट भर रहे थे । इस पिछले सनीचर अहीरन के एक बच्चा और हो गया ।

"अहीर झल्ली ढोकर जो कुछ ला पाता, उसी में गुजारा चल रहा था । गुजारा क्या; चूनी-भूसी जो कुछ मिला, एक जून आधा पेट खाकर पड़े रहे । न हुआ बच्चों को खिला दिया । खुद जैसे-तैसे रात काट दी । पर छाती के बच्चे का पेट कैसे भरें ? माँ के दूध तो तब उतरे जब उसके पेट में कुछ जाय ! माँ दिन-दिन स्वयं सूखती जा रही थी । कहीं पानी के लोटों से दूध बनता है ? गैया को भी तो घास-भूसी कुछ चाहिये ही ।"

गोमाता और नारी माता की इस तुलनात्मक चर्चा से मेरी दृष्टि श्रीमती जी की ओर उठ गयी । वह कुर्सी पर करवट से बैठी थीं । इस भौंड़ी बात से वह और भी घूम गयीं । उनकी उपेक्षा कर शुक्ला जी कहते चले गये:—

"आज क्या हुआ ? बाप लड़के ही झल्ली ले सब्जी मण्डी चला गया । चुटकी भर आटा जो कुछ था, माँ ने लोटे में घोल दिया । दो-दो चुल्लू लड़के-लड़की को पिला दिया । बच्चे अभी और माँग रहे थे । उन्हें डाँट, माँ ने थोड़ा सा घोल बचा लिया । छाती में दूध था नहीं । फाहे को बत्ती से माँ वही घोल नन्हें बच्चे को भी पिलाने लगी ।

"माँ की तबियत ठीक नहीं थी। उठ कर म्युनिसिपल तक गयी। लौट कर आयी तो बेचारी की चीख निकल गयी। लड़का नन्हें बच्चे का गला घोंटे बैठा था। बच्चे के प्राण निकल चुके थे। माँ सिर नोंच चिल्लाने लगी।

"लोग इकट्ठे हो गये। बच्चों को धमका कर पुचकार कर पूछा—लड़की ने उत्तर दिया—"भैया ने नन्हें को मार दिया।"

"लड़के को पुचकारा, मिठाई का लालच दिया। कहता है; सुनिये, कहता है—"अम्मा घोल हमें नहीं देती। नन्हे को पिला देती है। बड़ी भूख लगी थी। सुना आपने""क्या समय आ रहे हैं?"

वितृष्णा के स्वर में मिसेज शुक्ला ने कहा—"देखिये न, इन लोगों के बच्चे इतनी उम्र में भी कैसे पक्के होते हैं। पाँच बरस का बच्चा भी समझता है, उसका हिस्सा बँटाने वाला उसका दुश्मन है। यह हमारी सविता, इस सावन में पाँच की हो गयी, छठा लग रहा है। खाने को दो, थाली में कुत्ता मुंह डाल दे तो उलटा उसे प्यार करने लगती है।"

मेरी दृष्टि मिसेज़ शुक्ला की ओर से अपनी ओर आकर्षित करने के लिये शुक्लाजी ऊँचे स्वर में बोलने लगे—"अब कहिये, जिस देश में इतना पाप बस गया हो, वहाँ अकाल, महामारी, भूकम्प जो न हो जाय वही भगवान की दया। ऐसे ही कर्मों की बदौलत तो देश दाने-दाने को तरसने लगा है"" ओफ, दूध पीते बच्चों तक के दिल में बैर और हिंसा। इसी का दण्ड तो हम लोग भोग रहे हैं।"

अपनी कुर्सी पर कुछ और आगे बढ़ उन्होंने पूछा—"सोचिये, ऐसे बच्चों का आगे जाकर क्या बनेगा?"

"भूख""""—मैं कहना चाहता था। मेरी बात काट कर शुक्लाजी और ऊँचे स्वर में बोले, "अजी भूख नहीं तो ऐसे कर्मों का फल और क्या होगा? ऐसे पापों का फल तो सर्वनाश होकर भी पूरा नहीं हो सकता।"

मन की अवस्था बहस करने लायक न रही। पाप के कारण और फल के सम्बन्ध में सोचता रह गया—जन्म से पाप करने के लिये मजबूर, यह अभिशप्त क्या कभी पाप मुक्त हो सकेंगे"""?



काला आदमी

एम० ए० शैक सुबह दिन चढ़े उठे। सिरहाने की खिड़की के काँच से छनकर सूर्य की किरणों ने उनकी आँखों को चकाचौंध नहीं किया, जैसा कि पिछले दो सप्ताह से प्रातः हो रहा था। रात में दो कम्बल साँट कर सोये थे। सर्दी के ख्याल से या इसलिये कि नैनीताल आने के लिये इस महँगी में भी दो नये कम्बल खरीदे थे। लिहाफ से आराम मिल सकता है लेकिन वह पुराने ढङ्ग की चीज़ है। लाल-नीली छींट का अबरा और हरी मगजी, ये इस जमाने की चीज़ें नहीं हैं। इनका इस्तेमाल करने वाला दकियानूस मालूम होता है। विलायत में बर्फ़ पड़ती है लेकिन सब लोग कम्बल ही ओढ़ते हैं। साहब लोग लिहाफ़ इस्तेमाल नहीं करते।

शैक की आँख खुली तो सर्दी नहीं मालूम हुई बल्कि कुछ घुटता-सा लगा। सोचा क्लाउडी (बदली) है। ख्याल आया, पिछली रात की खुमारी भी हो सकती है। उसी समय यह भी याद आ गया कि आज नैनीताल छोड़कर नीचे जाना ही होगा। मन की उदासी से बन्द कमरे की हवा और भी बोझल जान पड़ने लगी। अस्पष्ट स्वर में शैक ने कहा—"ओ, इट्स स्टफ़ी (ऊँह, घुट रहा है)।"

शैक ने पलँग पर करवट ले खिड़की से झाँका। धौले धुँये का धुन्धलापन दृष्टि को रोके खिड़की के सामने खड़ा था। हाथ बढ़ा, चिटखनी हटा, शैक ने खिड़की का किवाड़ खींच लिया। झीना-झीना-सी धुन्ध खिड़की की राह

भीतर लुढ़क पड़ा। उस की शीतलता में साँस ले शैक फिर अस्पष्ट स्वर में बोला—'नाइस !' (बहुत खूब !) खिड़की के सामने से होकर बहुत महीन धुनी रुई या निर्गंध धुएँ का बादल-सा गुजर रहा था। सामने झील के पार पहाड़ी की चोटी से लेकर प्रायः नीचे झील तक ऐसे ही मलमल के-से पर्दों में छिपा दृष्टि से ओझल था। जहाँ-तहाँ एक के पीछे एक उड़ते चले जाते बादलों की ओट से किसी बँगले की लाल छत या सफेद दीवारें पल भर को झलक दिखा लोप हो जातीं।

नीचे झील के तरल, हरे फ़र्श पर भी बादल करवटें ले रहे थे। कभी झील के किसी भाग पर हरियाली झलक आती और उसमें कोई थिरकती नाव कुछ क्षण दिखाई दे फिर अदृश्य हो जाती। इस धुँधले-धौलेपन के अम्बर में 'यॉटक्लब' की पालदार नावें अपने स्थिर, श्वेत पाल उठाये ऐसे सो रही थीं, जैसे कोई विशालकाय बत्तख अपना एक पंख ऊँचा उठा जल में डूबकर रह गई हो। दिखाई न पड़ने के इस सौन्दर्य से मुग्ध हो शैक कुछ क्षण खिड़की का किवाड़ थामे, स्थिर आँखों से देखता रह गया। पहुँच से बाहर आकाश में मँडराने वाले बादल उसके चारों ओर, उसके हाथों में और उसके कमरे से नीचे लोट-पोट हो रहे थे। फिर उसके होंठ हिले और अस्पष्ट स्वर में उसने कहा—'ग्रेण्ड !' (वल्लाह !)

पलङ्ग के सिरहाने तिपाई पर पड़े सिगरेट केस से एक सिगरेट होंटों में थाम उसने दियासलाई की डिबिया पर सींक खींची। सींक का मसाला झड़ गया। वह सुलगी नहीं। तीसरी दियासलाई भी नहीं सुलगी, बल्कि डिबिया का मसाला छिल गया। मुस्करा कर शैक ने कहा—'ओह, डैम्प !' (सील गई) चौथी दियासलाई ही जल सकी। शैक की सिगरेट सुलग गई। निर्गन्ध धुएँ के विराट समारोह और प्रवाह में शैक ने भी अपने फेफड़ों से शक्ति भर धुआँ और मिला दिया। बिस्तर में पहनने के चौड़ी धारी वाले कपड़े पहने उसका शरीर कम्बलों से बाहर निकल आया। समीप कुरसी पर बैठ दृष्टि खिड़की से बाहर लगाये वह धुएँ के बादल छोड़ता चला जा रहा था, सहसा तल्लीताल की ओर से सूर्य की तिर्छी किरणें लुढ़कते हुए बादलों को बेधती हुई झील की ढलमल सतह को छू गई और फिर एक क्षण में लोप हो गईं। शैक के मुख से निकल गया—'स्प्लेण्डिड !' (वाह, क्या है !)

शेख स्वगत बातचीत करते समय भी अंग्रेजी मे ही बोलता था। यानी, वह सोचता भी अंग्रेज़ी मे ही था। आईने के सामने विशेष प्रयत्न से नकटाई की गाँठ ठीक से बाँधकर उसका मन समर्थन करता—'O. K.' कहीं चलने का समय हो जाने पर वह अपने आपको सचेत करता—'टाइम टुबी मूविङ्ग।' (चल पड़ना चाहिये)। और कभी परेशानी अनुभव कर वह बड़बड़ा देता—'बोरिंग!'

लड़कपन में होश सँभालने और मनुष्य बनने का स्वप्न देखते ही उसने अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ की बोली को शक्ति तथा आदर का प्रतिनिधि और समानार्थक देखा था। बचपन में शिक्षा अलिफ़ बे की तख्ती से शुरू ज़रूर हुई, परन्तु अंग्रेजी याद कर सकने लायक आयु होते ही उसने अंग्रेजी पढ़नी शुरू की। उसके मुख से अंग्रेजी का कोई शब्द सुन होनहार बेटे के भविष्य की कल्पना से पिता शेख मुश्ताक़ अहमद और उसकी माता के चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती। ग़रीब और पद दलित काले आदमियों के विराट समूह में पैदा हो, विद्या, बुद्धि और भाग्य के बल मुनव्वर के साहब बनने का प्रयत्न जारी रहा।

मुनव्वर के पिता, शेख मुश्ताक़ अहमद, लड़के के भविष्य का ख्याल कर अपने इलाके से गुजरने वाले तमाम साहब लोगों को सलाम बजा लाते। अवसर होने पर साहब लोगों के हाथ की चिट्ठी का उतना ही मूल्य था जितना किसी दस्तावेज़ का। इस ज़माने में साहब लोगों की सिफ़ारिशी चिट्ठी उतनी सुगमता से नहीं मिल पाती और न उसका वह प्रभाव ही रह गया है। उनके वालिद यानी मुनव्वर के दादा के जमाने में साहब लोगों की सनद ही सब से बड़ी बरकत और सलाम सब से बड़ा हुनर था। यहाँ तक कि वे कभी अपने गांव के समीप रेल के स्टेशन पर जाते तो गाड़ी आने के समय तक प्रतीक्षा कर 'गार्ड साहब' और 'ड्रिलेवर साहब' को सलाम करके लौटते।

शेख मुश्ताक़ अहमद के समय में सलाम और सनद दोनों की ही बरकत कम हो गई। यह बेकद्री देख उन्होंने कहना शुरू किया—'अब असली खानदानी तुरूके के साहब लोग विलायत से आते ही नहीं। वालिद के ज़माने में कलक्टर साहब लोगों का डेरा चलता था तो दस-दस घोड़े सवारी के साथ रहते। जिसके सलाम से खुश हो गये, कह दिया—'वेल यह गांव तुमको

जागीर में दिया।' और अब क्या है, टुच्चे गोरे विलायत से आते हैं। दरखास्त पर दरख्वास्त दिये जाओ, कुछ सुनाई नहीं। जैसे हरवाहे, किसान काश्तकार, वैसे ही जमींदार, ताल्लुकेदार। मलका के वक्त की बात ही और थी। और जब से काला आदमी अफसर होने लगा, इन्साफ रह ही नहीं गया। इन्साफ है अंग्रेज के हाथ में। अंग्रेज न हो तो काले आदमी एक दूसरे को फाड़-फाड़कर खा जायँ। गोरे आदमी के सम्मुख झुकना, उसे सलाम करना, मियां शेख मुश्ताक हुसेन को स्वाभाविक जान पड़ता था, परन्तु काले आदमी का साहब के अधिकार और अभिमान से अकड़ कर चलना और उसके सम्मुख झुकना, उन्हें विडम्बना जान पड़ती थी।

मुनव्वर की धारणा दूसरी थी। उसके जीवन की महत्त्वाकांक्षा काले आदमी के स्वाभाविक दैन्य की निराशा स्वीकार न करती। वह स्वयं साहब बनने का स्वप्न देखता था। उस के फूफा का भतीजा पल्टन में डाक्टर बन कर साहब हो गया था। दूसरा एक फुफेरा भाई जंगलात के महकमे में एम० डी० ओ० अफसर बन बिलकुल साहबी ढंग से रहता था। परिचितों और बिरादरी में भी कितने ही लोग अंग्रेजी पढ़ सरकारी नौकरी पा, अंग्रेजी बोल, अंग्रेजी ढंग से रहते थे। इन सब लोगों के साहबियत के तौर तरीके और सामान देख मुनव्वर स्वयं साहब बनने के मधुर स्वप्न में खो जाता।

इसी स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये वह साहबियत की विद्या अंग्रेजी अनेक रूप में एम० ए० तक पढ़ता रहा—साहित्य, गणित इतिहास और विज्ञान के माध्यम से वह अंग्रेजी ही पढ़ता रहा। कालेज में पढ़ते समय ही उसने साहबी ढंग अपना लिया। दादा और पिता की तराशी मूछों और लम्बी दाढ़ी की जगह सेफ्टीरेज़र से सफाचट चेहरा चमकने लगा। बुजुर्गों की उस्तरे से घुटी चाँद की जगह उसके सिर पर उतार-चढ़ाव से कढ़े घुंघराले बाल सँवारे रहते। कुरते-पायजामे की जगह कमीज़-पतलून। नेचे और हुक्के की जगह साफ़ सुथरा हलका-सा सिगरेट होठों में थमा रहता जो होठों की हरकत के साथ हिलता रहता। यह साहबियत की अदा थी, नज़ाकत और मर्दानगी लिये हुये।

काले आदमियों के कूड़े-करकट के काले ढेर पर साहबियत की शिक्षा और महत्वाकांक्षा की बरसात पड़ने से जैसे कुछ कुकुरमुत्ते उठ आते हैं वैसे ही रूप-रंग में अपनी परिस्थितियों से मिलकर भी, अपनी महत्त्वाकांक्षा में मुनव्वर

ने अपनी कोठरी को रूम (कमरा) बना लिया । मुनव्वर अहमद की जगह वह एम० एहमड बन गया । खान्दान का पुराना पद मियाँ छोड़ उसने मिस्टर कहलाना आरम्भ किया और अंग्रेज़ी में शेख के स्पेलिंग (हिज्जे) बदल वह शैक बन गया ।

अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त की साहबी ढंग से साहबी बोली बोल सकने की योग्यता और अपने खान्दान के लिहाज़ और प्रभाव के कारण शैक को मातहत अफ़सर (Subordinate officer's grade) की नौकरी मिल गई । तनख्वाह सवा-सौ रुपया थी परन्तु साहबियत के ढंग और तर्ज़ से रहने में खर्च अधिक था । बारोज़गार होकर भी वह कर्जों से दबा रहता और घर के सम्मुख याचक था , परन्तु समाज के सम्मुख सधा हुआ सुथरा साहब होने की तपस्या जारी थी । ऊँचे दर्जे के साहब लोगों की बैठक और क्लब तक उसकी पहुँच न हो पाई । परन्तु काले आदमियों के जिस प्रवाह से वह कड़ी तपस्या से ऊपर उठ सकता था, गिर कर उसमें मिल जाने के लिये भी वह तैयार न था । वह साहबों के समाज के स्वर्ग और काले आदमियों के नरक के बीच त्रिशंकु की भाँति लटका हुआ था । उसकी दृष्टि निरंतर तरक्की द्वारा ऊँची साहबियत पाने की ओर लगी हुई थी । युद्ध के दौरान में ज़रूरत के कारण काले आदमियों के लिये बन्द, साहबियत के अनेक ओहदे के द्वार खुल गये । ऐसे ही किसी ओहदे पर वह भी फिसल जाये, इसी आशा और प्रयत्न में वह दो सप्ताह की छुट्टी ले नैनीताल आया था । और फिर, गरमी में नैनीताल न जा सकना भी तो साहबियत में कलंक समझा जाता है ।

नैनीताल में उसने अपनी कल्पना का स्वर्ग पाया । लखनऊ में वह साहबियत के सब सलीकों के बावजूद केवल सेक्रेटेरियेट का क्लर्क था । नैनीताल में एक परिचित के यहाँ ठहर, अपने सब से कीमती सूट पहन, पन्द्रह दिन में तीन सौ रुपये खर्च कर, वलेरियो में चाय पी, कैपिटल के नाच में किसी गौरांग युवती के साथ नाच और मैट्रोपोल में लंच खा कर वह साहब के अस्तित्व को पूर्णता अनुभव कर सकता था और काले आदमी की छाप, चाहे कुछ समय के लिये ही सही, उस से दूर हो सकती थी ।

अपने इस स्वप्न को शैक ने नैनीताल में चरितार्थ भी किया । पाउडर की सुवास और ताजगी लिये, गौरांग एंगलो-इण्डियन युवती को बगल में ले काले आदमियों से खींची जाती रिक्शा पर बैठ गर्व से सिर ऊँचा कर साहब

लोगों के बीच वह मालरोड पर धड़धड़ाता निकल गया। मैट्रोपोल से वह काले आदमियों के कंधों पर झूलती डाँडी में सिगरेट पीता हुआ, काले आदमियों के बाज़ार मल्लीताल और तल्लीताल में से गुजरा। जब वह कैपिटल में नाच के समय पेग पर पेग माँग रहा था, काला आदमी खानसामा, सफेद चोगा पहने कमर और पगड़ी पर पेटी लगाये, उसकी पलकों के संकेत पर नाच रहा था। उस समय वह इन काले आदमियों की बाढ़ में, काली लहरों के परस्पर संघर्ष मे पैदा हो गई लहरों के सिर पर नाचती श्वेत झाग की भाँति, अपनी नशे से मतवाली कल्पना में थिरक रहा था।

और जब रात को हलकी फुहार में गोरी मेस का हाथ चूमकर, सिगरेट से धुआँ उड़ाते हुए वह काले कुलियों के कंधों पर डाँडी में लद अपने स्थान पर लौटा, उसके मेज़बान उसकी प्रतीक्षा में अभी तक जाग रहे थे। एक तार उनके हाथ में था। शैक के नाम तार था, उस के छोटे भाई का। चुगुनी फीस दे अर्जेंएट तार दिया गया था। छः लाइन के तार में जीवन की महत्वाकांक्षा पूरी होने के संक्षिप्त समाचार से शैक का शरीर एक स्पन्दन से सिहर उठा। स्वयं उसके और परिवार के प्रयत्नों से उसके लिये भरती के महकमे में लेफ्टिनैंट के ओहदे की मंजूरी की ख़बर थी और उसका सोमवार, सुबह ही लखनऊ में मौजूद होना ज़रूरी था।

× × ×

जुलाई के पहले सप्ताह में वर्षा आरम्भ हो जाने पर नैनीताल से नीचे जाने वालों का प्रवाह खूब बढ़ जाता है। पैट्रोल की कमी के कारण लारियों की संख्या घट गई और नैनीताल से काठगोदाम पहुँचना कठिन समस्या बन गयी। इज़्ज़तदार लोगों के लिये ऐसी समस्या और भी कठिन होती है। ड्राइवर की बगल में एक ही सीट रहती है, जिस पर बैठने से आदमी साधारण से ऊँचा और भिन्न समझा जा सकता है।

शैक अपना समान ले दो बजे से ही मोटरों के अड्डे पर मौजूद था। अनेक लारियाँ केवल फ़ौज के गोरों के लिये ही थीं। दूसरी लारियों में ड्राइवर के साथ की जगह का टिकट पहाड़ की उतराई में चक्कर आने से डरने वाले पहले से खरीद चुके थे। इस इज़्ज़त की जगह के लिये दो घण्टे तक तड़पने के बाद शैक एक रुपया बारह आने की जगह सात रुपये दे एक कार में काठगोदाम पहुँचा।

काठगोदाम से चलने वाली गाड़ी में तीन चौथाई स्थान पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिये, फ़ी मुसाफ़िर दो सफ़ने लायक जगह के हिसाब से उन के खाने-पीने के लिये अलग गाड़ी के साथ, सुरक्षित था। शेष जगह में तीसरे दर्जे के मुसाफिर, जो संख्या में पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों से सौगुने थे, शहद की मक्खियों की भाँति एक के ऊपर एक लद रहे थे।

इस समस्या की ओर शेक का ध्यान नहीं गया। तीसरे दर्जे में सफ़र करने वाले काले आदमियों से उसे सरोकार भी न था। लपक कर टिकट की खिड़की पर पहुँचा—"वन सेकण्ड क्लास प्लीज़!" बटुआ खोल उसने अधिकार के स्वर में माँग की।

खिड़की के तंग झरोखे से दिखाई दे रही बाबू की मुद्रा स्थिर रही—'सर, वेयरसे नो सीट। आल दि बर्थ्स सोल्ड।' (जनाब, कोई जगह शेष नहीं सब, जगह बिक चुकी हैं।) बाबू ने स्थिर भाव से उत्तर दिया।

शेक निराशा से चुप रह गया परन्तु अपने को सँभाल, बटुए में फिर हाथ डाल और भी अधिक गम्भीर स्वर से उसने कहा—"आल राइट, फर्स्ट क्लास।"

बाबू अब भी विचलित न हुआ—"फर्स्ट क्लास के टिकट भी समाप्त हो चुके हैं।"

नैनीताल की शीतल कोहरा-मिली वायु से सहसा काठगोदाम की गरमी और धूप में आने से शेक के चेहरे पर पसीने की बूंदें झलक आई थीं। बाबू की तटस्थ मुद्रा और निराशापूर्ण बात से वह बह उठीं। सेकण्ड क्लास के टिकट की क़ीमत तेरह रुपये आठ आने के साथ पाँच रुपये का नोट बख्शीश के रूप में आगे बढ़ा कर शेक ने दुबारा टिकट के लिये अनुरोध किया। बाबू के स्वर में सौजन्य आ गया। "अफ़सोस है!"—बाबू ने उत्तर दिया, "आधी से अधिक जगह तो फौजी अफसरों के लिये पहले से घिरी रहती हैं। जगह है ही नहीं। स्टेशन मास्टर का हुक्म टिकिट बेचने का नहीं है। ठीक समझें तो तीसरे दर्जे का टिकिट ले लीजिये, वर्ना शायद वह भी न मिले।"

अपमान और परेशानी में शेक तीसरे दर्जे की खिड़की की ओर गया। टिकट वास्तव में नहीं मिल रहा था। भीड़ को चीर कर खिड़की तक पहुँचना सम्भव न था। काले आदमियों के मैले वस्त्रों और पसीने की गन्ध से साँस घुट रही थी, लेकिन टिकट लिये बिना और सफ़र किये बिना चारा न था।

अगले दिन सुबह लखनऊ न पहुँचने का अर्थ था जीवन की सफलता की आशा का डूब जाना। हाथ से निकले जाते जीवन के अवलम्ब को पकड़ पाने के लिये शौक दुर्गन्ध से उबकाई पैदा करने वाली उस भीड़ में धँस पड़ा।

अंग्रेजी में बहस कर और टिकट लेकर जब वह बाहर निकला, उसकी कमीज़ और पतलून बेलन से निकली ईख की तरह मैली और विरूप हो चुकी थी। मोटर के ड्राइवर तथा क्लीनर और उसमें बहुत कम अन्तर रह गया था। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर नहीं लगी थी, परन्तु भीड़ और असबाब के जमाव के कारण ठोकर या धक्का खाये बिना दो कदम चल सकना कठिन था।

भोजीपुरा में रात के समय कुली नहीं मिलते। इसलिये भोजीपुरा-लखनऊ लाइन के मुसाफिर इस गाड़ी से कटकर सीधी लखनऊ जाने वाली गाड़ी में जुड़ जाने वाले डिब्बों में बैठने के लिये प्लेटफार्म के अगले भाग पर जमा हो रहे थे। प्रत्येक मुसाफिर जानता था—जमा होने वाले सब मुसाफिरों के लिये गाड़ी में जगह नहीं। जरा-सी सुस्ती, तनिक-सी शिथिलता के परिणाम में वही गाड़ी से रह जायगा। प्रत्येक मुसाफिर आवश्यक समझता था कि दूसरों से पहले वह गाड़ी में घुसे और अपने स्त्री-बच्चों को भीतर खींच ले। परिणाम में प्रत्येक मुसाफिर एक दूसरे को शत्रु समझ रहा था। हृदय में भरी प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिहिंसा से भीड़ सना रही थी।

प्लेटफार्म के पश्चिम की ओर से धक्-धक् छक-छक करता हुआ इंजन गाड़ी को प्लेटफार्म पर धकेले आ रहा था। गाड़ी रुकने से पहले ही मुसाफिर दरवाजे खुलने की परवाह न कर खिड़कियों से ही गाड़ी के भीतर कूदने लगे।

जब तक शौक पसीने से सराबोर टिकट हाथ में ले लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुँचे, गाड़ी भर चुकी थी। कुली फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के मुसाफिरों के बिस्तर लगा रहे थे और वे मुसाफिर निश्चिन्त भाव से अपने डिब्बे के सामने टहल रहे थे। शौक की दृष्टि उस ओर गई। उसने अनुभव किया, वह स्वयं घोंसले से गिरे हुये पक्षी की भाँति असहाय था। लपक कर वह सीधे लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुँचा। उसके दो सूटकेस और होल्डाल अब भी प्लेटफार्म पर पड़े थे और कुली का पता नहीं। वह शायद पहले फर्स्ट और सेकण्ड-क्लास के मुसाफिरों का असबाब चढ़ा रहा था। भरी हुई गाड़ी के दरवाजों से अब भी मुसाफिर चिपक रहे थे।

प्रतिष्ठा और औचित्य का विचार छोड़ शैक अपना सामान उठा खिड़की से भीतर ढकेलने लगा। भीतर बैठे मुसाफ़िर सामान की राह रोक रहे थे और शैक उसे भीतर ठूँस रहा था। दोनों ओर से हाथों और शब्दों की शक्ति का भी उपयोग हो रहा था। शैक की धमकी बेकार हो रही थी। भीतर भीड़ में पिसते किसी मुसाफिर ने सिफ़ारिश की—"अरे, भाई आने दो। किसी तरह मिल-जुल कर मुसीबत का वक़्त काटना है।"

शैक का सामान भीतर थाम लिया गया। वह दरवाजे की राह पिल पड़ा। पीछे से आने वाले धक्के ने उसे किसी तरह भीतर पहुँचा दिया। इस समय काले आदमियों के शरीर की दुर्गन्ध और मैल की ओर उसका ध्यान न गया। भीतर धँस पाने के मल्ल युद्ध से उसके फेफड़े धौंकनी की भाँति चल रहे थे। खूब सटकर चौबीस आदमियों के बैठने की जगह में ढेरों असबाब और चालीस आदमी भर चुके थे। शैक किसी तरह एक पाँव गाड़ी के फर्श पर और दूसरा अपने सूटकेस पर रखे, ऊपर असबाब रखने की जगह थामे खड़ा था। अब भी गाड़ी के भीतर धँसने का यत्न करने वाले और ढेरों असबाब लिये गाड़ी में चढ़ पाने के लिये व्याकुलता से छटपटाते मुसाफिर प्लेटफार्म पर मौजूद थे।

बन्द गले का सफेद कोट-पतलून पहने, हाथ में टिकट काटने की मशीन लिये एक टिकट बाबू आया। उनके पीछे ऊँचे और चौड़े डील का एक अंग्रेज मुह में दबे पाइप से धुआँ छोड़ता खड़ा था। टिकट बाबू ने गाड़ी के मुसाफिरों को बाहर निकाल कर साहब के खानसामे और बैरे के लिये जगह करने का हुक्म दिया। मुसाफिर सहम गये। तीन-चार बहुत ही निरीह मुसाफिर टिकट बाबू के हाथ थाम कर नीचे खींचने से अपनी गठरी-मुठरी छाती से चिपकाये, कातर आँखों से देखते गाड़ी से उतर गये। साहब लोगों के खानसामे और बैरे अपना असबाब गाड़ी में ढकेल भीतर चढ़ने लगे। फर्स्ट और सेकण्ड क्लास में आराम से बैठे साहब लोगों के अर्दलियों और नौकरों का उनके साथ पहुँचना जरूरी था। छः अर्दली, खानसामे अपने बाल-बच्चों समेत आ पहुँचे। शैक को अपना असबाब हटा कर जगह करने के लिये कहा गया। यह बात शैक के सहन की सीमा को लाँघ गई।

"क्या दूसरे मुसाफिरों ने टिकट नहीं खरीदा है?" तैश में शैक ने इन्तजाम करने वाले बाबू को उत्तर दिया।

"टिकट का कोई सवाल नहीं"—उसे उत्तर मिला, "टिकट साहब के नौकरों ने भी तो खरीदे हैं। इनके लिए जगह की जरूरत नहीं है ?"

जगह न खाली करने की हालत में शैक को गाड़ी से उतार दिये जाने की धमकी दी गई। उस के अड़ जाने पर साहब के नौकरों ने ही उसका सामान एक तरफ हटा दिया। उसके देखते दूसरे मुसाफिरों को खड़ा कर साहब लोगों के छः नौकरों के लिए बैठने की जगह कर दी गई। बैरे और अर्दली लोग बैठ कर काले आदमियों के भेड़, बकरी की तरह गाड़ी में भर आने की शिकायत करने लगे।

शैक बिंधा बैठा था। उसे जान पड़ा—जैसे यह लाँछन उस पर ही लगाया जा रहा हो। "और तुम खुद क्या हो ?"—गुस्से में उसने एक अर्दली से घूर कर पूछा।

"हैं क्या ?"—अर्दली ने उत्तर दिया, "यही तो काले आदमी की आदत है कि एक-दूसरे को देख नहीं सकता। दूसरे को देखकर जलता है। काले आदमी में एका बिलकुल नहीं। इनसाफ़ है तो साहब लोगों में।"

एक के बाद दूसरा बैरा और अर्दली अपने साहब के रोब और उदारता का बखान करने लगा। दूसरे मुसाफ़िरों के लिये इस का चाहे जो अर्थ रहा हो, शैक इसे व्यक्तिगत आक्षेप समझ रहा था। उसके लिये इसका अर्थ था—तुम काले आदमी हो, तुम साहब बन कर भी साहब की बराबरी नहीं कर सकते।

स्थान की तङ्गी के कारण एक साहब के बैरे का एक सफेदपोश सज्जन से, जो तङ्ग जगह में किसी तरह सिमिट कर बैठा था, जगह के बारे में झगड़ा हो गया। इस अन्याय के विरोध में चुप रहना शैक के लिये सम्भव न रहा। उसने बैरे को डांट दिया। बात हिन्दुस्तानी में शुरू कर अँग्रेज़ी में बोलने लगा। अँग्रेज़ी की खिदमत करने वाला बैरा काले आदमी की डांट बरदाशत करने के लिये तैयार न था। अधिक कुछ सुने और समझे बिना ही उसने जवाब दिया—"बड़े आये अँग्रेज़ी बोल कर साहब बनने वाले। पतलून पहन कर दो लफ्ज़ अँग्रेज़ी क्या सीख ली, साहब बन गये। ऐसे बीसियों देख हैं हमने देहरी पर सिर रगड़ते।"

बैरे की इस गाली से शैक का खून उबल उठा। वह गाली उसके व्यक्तित्व को न थी। परिस्थितियों के कारण वह अपने व्यक्तित्व को एक ओर रख चुका था। वह गाली थी उसकी नस्ल को, जिस से छूटने, बच पाने या भाग जाने का उपाय न था। फिर गाली दे रहा था एक कमीना काला आदमी। बौखला कर शैक बैरे पर हाथ छोड़ बैठा। लोगों के बीच-बचाव के लिये आ पड़ने पर भी वह सीना उभारे और घूँसा ताने कहता चला गया --"जा अपने साहब को बुला ला! साहब के जूते क्या उठाने लगा है, साहब का भी बाप बन गया!"—गाड़ी में सन्नाटा छा गया और फिर धीरे-धीरे फुसफुसाहट से बैरे की गुस्ताखी की आलोचना होने लगी।

हलद्वानी स्टेशन पर गाड़ी थमते ही बैरा अपने साहब के यहां दुहाई देने पहुँचा। स्टेशन से गाड़ी छूटने को ही थी कि एक स्टेशन बाबू बैरे के साथ दो कान्स्टेबल लेकर आये और शैक को हिरासत में ले गाड़ी से उतर जाने को कहा। बैरे के साहब अब भी दस कदम पीछे खड़े शान्ति से अपने पाइप से धुआँ उड़ा रहे थे।

क्रोध से आँखें लाल किये, मुंह से कुछ बोले बिना शैक अपनी आस्तीन की बाँहें चढ़ाता असबाब सहित गाड़ी से उतर आया। सुबह पहुँच नयी नौकरी पर हाज़िर होने का ध्यान उसे न रहा।

× × ×

दारोगा साहब रपट का रजिस्टर फर्श पर पटक बिगड़ रहे थे—"जब रपट लिखाने वाला फरियादी ही नहीं तो हम लिखें क्या तुम्हारा सिर?"

शैक का रूप, रंग और ढंग देख दारोगा साहब ने उसे बैठने के लिये कुर्सी दी और एक गिलास पानी और डिबिया से पान पेश किया। स्वयं दो बीड़े पान मुँह में दबाते हुये दारोगा साहब ने पूछा—"आखिर आप पढ़े-लिखे शरीफ आदमी, उस कमीने के मुँह लगे क्योंकर?"

सान्त्वना पा शैक ने कहा--"क्या अर्ज करूँ जनाब! काला आदमी बढ़ कर गाली दे रहा था।"

शैक को हिरासत में लेने वाला कान्स्टेबल सामने खड़ा था। दारोगा साहब का रुख देख उसने कहा—"और सारा आपुन खुद तवे का-सा काला रहा!" "ओ कौन अंग्रेज रहा! बहुत होय, देशी किरस्टान रहा होय!"

उगालदान में पीक छोड़ बुजुर्गियत के अधिकार से दारोगा साहब ने फर्माया—"अरे भाई, इसी को तो कहते हैं, जवानी बावली होती है। आपको काला आदमी कहा था, तो सुन लेते! आखिर कौम और नस्ल से हम लोग काले ही हैं। आप काले हैं, हम काले हैं और वह भी साला काला। उस साले को अपनी नौकरी से मतलब, हमें अपनी रोटी-दाल से मतलब। आप खयाल कीजिये अपनी रोजी का। वल्लाह काले आदमी की गाली से चिढ़ने लगें तो हो चुका। जो सब की गाली, वह किसी की गाली नहीं। अपनी-अपनी जगह कोई अपने को काला आदमी नहीं मानता और एक में मिलकर सभी काले। सो उसमें क्या?"

दारोगा साहब के समर्थन में सिर हिलाकर कान्स्टेबल ने कहा—"ठीक तो कहते हैं हुजूर, और क्या? कोई अपने को गाली दें, ससुर का सिर फोड़ दें! काले आदमी की क्या गाली?............उई तो जात ठहरी। उई से कौन इनकारी है?"

शौक पर जैसे घड़ा भर पानी पड़ गया! वह क्या उत्तर दे? लेफ्टीनेण्ट के ओहदे की नौकरी क्या यों ही हाथ से गई.........इन्हीं काले आदमियों के कारण?...........यह जात का कालापन कैसे धुले?



समाधि की धूल

"इनके बारे में तो सुना था—बड़े भले आदमी हैं, बहुत पढ़े लिखे हैं, अमृतसर के किसी कारखाने में मैनेजर हैं। ससुराल का ध्यान कर घबराहट होती थी। सुना था—बड़ा दिहात है, पहाड़ में व्यास नदी के किनारे। रेल तो क्या, नदी पार मोटर-लारी भी नहीं जाती, निराले रीति-रिवाज हैं।

बिदाई में छोटे भैया ससुराल तक साथ गये थे। बेर-बेर पूछते जाते—"जल या खाने को कुछ चाहिए? गरमी तो नहीं लग रही? कुछ और जरूरत हो तो कहो?"—ओढ़नियों और फुलकारियों की तहों में यों लिपटी थी कि किसी तरह साँस भर ही आ रही थी। लज्जा के मारे बोल भी न पाती। सिर हिलाकर रह जाती।

"नदी के किनारे मोटर लारी रुकी। नायन ने उलझ गये कपड़ों को सुलझा, कन्धे को सहारा दे, लारी से उतार पालकी में बैठा दिया। नदी पर नाव, नाव पर पालकी और पालकी पर मैं, ऐसे नदी पार कर कुछ दूर गये। बरात के साथ बाजे बज रहे थे। इनके अतिरिक्त सामने से भी बाजों का स्वर सुनाई दिया। बरात के साथ के बाजों का स्वर और ऊँचा हो गया। समझा पहुँच गये।

"हमारे स्वागत में बाजे ससुराल के द्वार पर बज रहे थे। यों तो जो होना था, हो चुका था। मैं अब इसी घर की वस्तु थी परन्तु द्वार पर पहुँचे तो कनपटियों से पसीने की धारें ठुड्डी तक बहने लगीं। हृदय की गति बढ़ गयी।

बाजों की तुमुल ध्वनि, पटाखों और बन्दूकों का शब्द, मंगलाचरण गाती स्त्रियों के कण्ठ का सम्मिलित, अस्पष्ट परन्तु ऊँचा स्वर, पुरुषों की झुँझलाहट, चिंता और हुकूमत भरी आवाजें, विराट समारोह का गोलमाल हो रहा था। मेरे छोटे से हृदय में मेरा संसार बदल रहा था। कभी से मैं इस दिन की प्रतीक्षा और तैयारी कर रही थी। वह सब तैयारी व्यर्थ रही, हृदय आतंक से बैठा जा रहा था, सिर में चक्कर आने लगा।

"गीत गाती स्त्रियों के गिरोह ने पालकी को घेर लिया। पर्दा उठा बांह थाम मुझे बाहर आने का संकेत किया गया। कांपते पैरों से मैं द्वार की ओर सरकने लगी। कुछ गोलमाल-सा सुनाई दिया। स्त्रियों का गाना रुक गया? "पहले समाधि पूजी जायगी।"......"इधर चलो न!"......"भूल गये। हाँ-हाँ चलो!"—मेरे कन्धे थामे स्त्रियों ने मुझे घुमा दिया।

गोलमाल में भैया का उत्तेजित स्वर सुनाई दिया—"यह सब मसान-मढ़ैया पूजने के खुराफात नहीं होंगे। क्या तमाशा हो रहा है?"

उत्तेजित स्वर में उत्तर मिलने लगे—"यह तुम्हारा घर नहीं है। हमारे रीति-रिवाज कैसे नहीं होंगे?"

किसी ने शान्ति से समझाया—"भाई पीर-मसान की पूजा नहीं है। गांव का ऐतिहासिक स्थान है। नये ब्याहे लड़के-लड़की के लिये आशीर्वाद की कामना से ऐसा किया जाता है। इसमें हर्ज की कोई बात नहीं है।"—मन में आया, भैया व्यर्थ में झंझट कर रहे हैं। जब मुझे दे ही डाला तो अब तुम्हारा अधिकार क्या? स्त्रियों का गिरोह चलने लगा। उसके बीच कंधों से थामकर मुझे चलाया जा रहा था।

"कुछ लड़के लड़कियां उत्साह से भागते हुए आगे-आगे चल रहे थे। स्त्रियों ने हथेलियों पर जल के लोटे और पूजा के सामान की थालियां ली हुई थीं। मेरे आंचल के छोर में 'इन' के दुपट्टे के छोर की गांठ बांधी। 'ये' भी चल रहे थे। स्त्रियां बेमेल तीखे स्वर में गाती जा रही थीं। स्त्रियों की किलकिलाहट और बच्चों की चीखों के बीच समाधि की आरती उतारी गई। हम दोनों ने समाधि पर माथा टेका। लौटकर द्वार-चार और दूसरी रीतियां बहुत देर तक होती रहीं।

"सिमटी बैठी थी। दिन भर की थकावट से शरीर जकड़ सा रहा था। आँखें नींद से भारी थीं परन्तु मुंद न पातीं, जैसे उनमे तिनके अड़े हों। सबने उत्कट क्षण अभी आने को था।

"बिना आहट किये आ वे मेरे समीप पलंग पर बैठ गये। मैं और सिमिट गई। कुछ सोचकर उन्होंने पूछा—रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई? चुप रही। स्वयम् ही कहने लगे—इस सफर से थकावट बहुत हो जाती है। आराम से लेट जाओ न! लज्जा से मेरा सिर झुक गया।

"कुछ और सोचकर बोले—समाधि की पूजा से भैया को बुरा लगा। पर उसमें ऐसी कोई बात नहीं है। कोई पीर-मसान नहीं है। लोग उसे 'प्रेमियों की समाधि या 'बल्लू चमेली की समाधि' कहते हैं। यहाँ इस समाधि की बड़ी मानता और महत्व है। यह पत्थर की पूजा नहीं, भाव की आराधना है।'

"तकिया बगल में ले वे करवट से हो गये—'आराम से बैठो!—उन्होंने आग्रह किया परन्तु मैं लजा कर वैसे ही सिमटी रही।

"सुनाने लगे—

"यह बल्लू चमेली की समाधि कहाती है।

"यहां से दस कोस ऊपर पहाड़ में एक गाँव है 'पतिया'। बल्लू उसी गाँव के गूजर रद्दू का बेटा था। भला-सा जवान। गरीब मां-बाप का बेटा। चीड़ के पेड़ों की बसटी में पतिया है, उस पर रेहड़ में डामू की बस्ती है। डामू के राधे साह का बड़ा नाम था। तीस-चालीस कोस में उनकी हवेली की धूम है। चमेली राधे साह की बेटी थी; ओस में भीगी, सुन्दर, निर्मल और सुगन्ध से भरपूर चमेली की कली।

"बल्लू अपने गाँव और डामू के गोरू चराता था। एक रोज उसने बीच की घाटी की बावड़ी पर चमेली को देखा। देखा चाहे पहले भी हो, पर किसी क्षण का देखा कुछ और ही हो जाता है। हो सकता है, किसी पिछले जन्म के संस्कार जाग उठे। बल्लू चमेली के पीछे हो लिया।

"पास पड़ोस में चर्चा होने लगी। चमेली का घर से निकलना बन्द हो गया। बल्लू अपने गोरू छोड़ दिन रात डामू की बस्ती की परिक्रमा करने लगा। दुपहर की वायु से सांय-सांय करती चीड़ों के नीचे, घटा-टोप अँधेरी,

काली रात में, डामू के नीचे श्मशान से और मूसलाधार वर्षा में, किसी भी समय चमेली को टेरती बल्लू की बाँसुरी की तान सुनाई दे जाती।

"राधेसाह अपना अपमान समझ गूजर के लड़के पर बहुत बिगड़े। रद्दू के छप्पर में आग लगवा दी। उनके आदमी लट्ठ लिए बल्लू को मारने के लिए फिरते रहते। कहते हैं—बल्लू के गोरू को घेरकर बैठ जाते और वह प्रेम का देवता उन्हें प्रेम की बंशी सुनाता। एक दिन राधे साह के नौकर ने बल्लू पर लट्ठ उठाया। बल्लू खड़ा हँसता रहा। डामू के ही एक साँड ने उठाकर नौकर को चट्टान पर दे मारा। उसकी दो पसली टूट गईं।

"चमेली पर कड़ा पहरा था; कभी हवेली के आँगन से निकलने न पाये। राधे साह ने लड़की की सगाई भिजवा गाँव के मिट्ठू साह के लड़के से शादी कर दी। प्रेमी के मन की आह लगी। लड़के को साँप डस गया।

"यहाँ से चार कोस ऊपर, नदी किनारे 'जलेश्वर' का स्थान है। बैसाखी के दिन जलेश्वर के पूजन का बड़ा महात्म और पुण्य है। वहाँ बैसाखी का बड़ा भारी मेला लगता है। दूर-दूर से बिसाती, हलवाई और तमाशे वाले आते हैं। झूले पड़ते हैं, रहट लगते हैं। दस-पंद्रह कोस के भीतर कोई आदमी नहीं जो इस मेले में न आता हो।

"मेले में राधे साह लड़की को ले पूजन कर मनौती मानने आये। बल्लू की तो सूरत ही चमेली में लगी थी। उसके हृदय से कैसे छिप सकता था। अदृश्य तार से बँधा वह भी नंगे पाँव से चट्टानों पर लहू टपकाता, बंशी बजाता मेले में पहुँचा।

"चमेली पूजन के लिए नये कपड़े पहिन कर आयी थी। काली खूफ की तंग सुत्थन (पायजामा) गुलाबी कुरता और पीली ओढ़नी में गोटा टँका हुआ। माँ, भावजों और सहेलियों से घिरी वह बिसाती के यहाँ टिकुली, बुन्दे खरीद रही थी। बल्लू की दृष्टि उस पर पड़ी और पुकार बैठा—"चमेली!"

"माँ, भावजें और सहेलियाँ चमेली को दूसरी ओर ले गईं। बल्लू पालतू कुत्ते की भाँति उनके पीछे-पीछे चला। स्त्रियों ने उसे गालियाँ दीं। बल्लू चुप रहा परन्तु चमेली को एक बेर देख पीछा न छोड़ा।

"धर्म-स्थान का मेला ठहरा। सब भले घरों की बहू-बेटियाँ वहाँ पूजन

के लिये आती है। ऐसा अनाचार वहां कैसे सहा जाय ? लोग जमा हो गये। नल्लू को डाट-फटकार और नसीहत करने लगे। बल्लू के मन में प्रेम का आनन्द समा गया था। वह खड़ा गाली, लानत और फटकार सुन मुस्कराता रहा। केवल चमेली को उसने अपनी आँखों से ओट न होने दिया।

"चमेली की माँ और सहेलियाँ उसे ले शिवपूजन के लिये मन्दिर में गईं। वह बावला भी मन्दिर के भीतर धंसने लगा। प्रेम भगवान के सच्चे पुजारी के लिये ही भगवान के चरणों मे स्थान न था। उसे धक्के दे बाहर निकाल दिया गया। वह उठा और फिर भीतर चला। राधे साह ने अपने गाँव के लोगों को पुकारा। बल्लू पर लात, घूँसे और पत्थर पड़ने लगे। उस के माथे का खून एड़ी तक बह गया। चमेली को देख पाने के लिये मन्दिर में घुसने के प्रयत्न से वह न हटा।

"मन्दिर के भीतर कोने में खड़ी सहेलियों से घिरी चमेली यह देख रही थी। कहते हैं—उस युग में हर के लिए सती ने तपस्या की थी। उसी का बदला हर, बल्लू के रूप मे तपस्या कर दे रहे थे। सती चमेली से न रहा गया। आँसू बहाते हुये अपनी माँ की बगल से आकर उसने कहा—इतना ही मेरा प्यार है तो नदी मे जाकर डूब मर।"...'क्या मेरी जग हँसाई करा रहा है ?

"ऊपर पहाड़ी से गिरती-पड़ती व्यास जलेश्वर में आती है। जल तीर जैसा तेज और बरफ जैसा ठण्डा। नदी बड़ी-बड़ी और पैनी चट्टानो से भरी है। नदी की धार इन चट्टानों से टकराती है तो बाँसों ऊँची फुहारें उठती रहती है। नदी का पाट फेन से भरा रहता है। मनुष्य तो क्या; यदि समूचे वृक्ष का कुन्दा भी उसमे गिर जाय तो छिपटी उड़ जाँय।

"चमेली की बात सुन बल्लू जैसे क्षण भर को सहम गया। फिर नदी की ओर मुँह कर दौड़ पड़ा। सब लोगों के देखते-देखते वह नदी में कूद पड़ा।

अभी लोगों की भौंचक दृष्टि उसी ओर थी कि जैसे हवा में बिजली कौंद गई, बल्लू के कदमों पर चमेली दौड़ती दिखाई दी। उतनी ही तेज और उस से भी अधिक उतावली। कोई कुछ समझ या बोल सके, इस के पहले ही वह भी नदी के उमड़ते फेन में कूद पड़ी।

"विस्मय-स्तब्ध बेबस लोगों की पंक्तियाँ नदी किनारे खड़ी थीं पर कोई क्या कर सकता था ?

"प्रेम की महिमा""! अगले दिन लोगों ने देखा—यहाँ एक चट्टान पर एक-दूसरे की बाहों में लिपटे; दोनों के शरीर रखे हैं। भक्ति-भाव से उठा लोगों ने उन्हें सद्गति करने के लिये चिता दी। परन्तु उनकी तो सद्गति पहले ही हो चुकी थी। यहाँ उनकी समाधि बनाई गई। अब जलेश्वर के पूजन के साथ इस समाधि की पूजा होती है। ब्याह के पश्चात्, द्वार-प्रवेश से पहले नयी आई बहू के साथ वर 'प्रेमियों की समाधि' की पूजा करता है। लोगों का विश्वास है, इससे उनमें कभी प्रेम-क्षय नहीं होता। जिन घरों में कलह रहती है, वहाँ लोग समाधि की धूल ले जाकर रख लेते हैं। इससे पति-पत्नी की कलह दूर हो जाती है।

"अलौकिक प्रेमियों से संतत् प्रेम का वरदान पाने के लिये ही वह पूजा की गई थी।"

सांस रोके मैं सुन रही थी। प्रतिक्षण उनके स्वर से बढ़ता परिचय उनके स्वर के माधुर्य को बढ़ाता जा रहा था, बात समाप्त हो जाने पर हृदय से एक गहरा निश्वास उठा और मेरा सिर प्रेम के माधुर्य की स्मृति और नवीन अनुराग से झुक गया।

मेरा श्वास रुकने लगा—अक्षय और संतत् प्रेम का वरदान पा, अनुराग की प्रथम घड़ी में ही प्रेमी को धोखा दे जीवन को कैसे विषाक्त करदूं ? सिर झुकाये चुप रह गई। आँसू छलक आये। और भी सरल अनुरोध से उन्होंने बांह मेरी पीठ पर रख दोहराया—"बोलो!"

होंठ काट आँसुओं का घूंट भर उत्तर दिया—"प्रेम करना सीखा था!"

× × ×

कितनी ही बेर समाधि पर अनन्त श्रद्धा प्रार्थना कर, समाधि की धूल ला घर के कोने-कोने में रख चुकी हूँ"""पर उस धूल को उन के हृदय में कैसे रख पाउँ """"""



रोटी का मोल

रामगोपाल छुट्टनजी-माधोमल की आढ़त की कोठी में मुनीम है। वे दिन कुछ और ही थे। आढ़त की कोठी का गरिमामय, गम्भीर वातावरण चिंतापूर्ण निष्क्रियता, आशंका और उत्तेजना में बदल गया। ज़ाहिर कारोबार एक तरह से चौपट था। कई महीने चढ़ा-चढ़ी और तेज़ी की ले-दे रही। फिर अचानक कण्ट्रोल की अफ़वाह सच्ची हो गई। जैसे मदरसे में छोटी जमात के लड़के मास्टर साहब की ग़ैरहाज़िरी में खूब मार-पीट और धमा-चौकड़ी मचा रहे हों, अचानक मास्टर साहब आकर मेज़ पर बेंत फटकार दें, लड़के आशंका से सन्नाटा खींच जांय लेकिन दिल में गुब्बार भरा रहे; उत्तेजना उमड़ती रहे। ठीक यही हाल बाज़ार का था।

लालाजी मसनद के सहारे बैठे उँगलियां चटखाते जाने क्या-क्या सोचा करते थे। कभी बड़े मुनीम हरलाल को संकेत से बुला कान में कुछ बातचीत कर लेते। फ़ोन की घण्टी भी लगातार टन-टन नहीं करती। दलालों का अँगोछे की आड़ में लालाजी और हरलाल के हाथ की उँगलियां थाम-थाम भाव के लिए झगड़ना अब न होता। कोठी की कल-कल, काँय-काँय बन्द हो गई। कहार पानी के डोल और पान के बीड़े लाने से परेशान नहीं होता। फ़ोन पर भाव नहीं पुकारे जाते। इतना ही इशारा होता—"कहो तो फिर आवें!" कोई दलाल आता तो अधूरी-अधूरी बातें होतीं। इन आशंकित स्वरों और अधूरी बातों में और भी अधिक उत्तेजना रहती।

रामगोपाल अपनी जगह पर बैठा गरदन उचका देता । खातों में बीजक चढ़ते रहने पर भी उसके कान उस ओर खिंच जाते । वह कोठी में सब से छोटा मुनीम था । बहुत-सी बातें उसे मालूम न थीं परन्तु शंकित और उत्तेजित होने लायक बहुत कुछ वह जानता भी था । वह जानता था, भदोरिया और गौरी में सेठजी ने हाल में तीस-तीस हजार मन गेहूँ और चना भरा है । मुनीम हरलाल के साथ वह भी वहाँ गया था । कानपुर में भी अपने कई कोठे हैं । कण्ट्रोल की वजह से ऐसा जान पड़ता मानो कोठी की सम्पत्ति पर शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है । लाला जी और मुनीम लोग शत्रुओं से घिर कर जी-जान से मुकाबिले के लिये तैयार हैं ।

मंझले मुनीम किसनलाल की आदत थी, सुरती मलते-मलते कोई न कोई चटपटी बात शुरू कर देते । वे कोठी के सम्वाददाता थे । बड़े मुनीम हरलाल बाज़ वक्त उन्हें 'नारद महाराज' कहकर मज़ाक भी कर देते । किसनलाल कभी चमनगंज में किसी हिन्दू औरत के मुसलमानों द्वारा इक्के पर भगा लिये जाने की कहानी, कभी 'तिलक हाल' में कांग्रेस की तलाशी की और कभी 'हटिया' में काँग्रेस के वालंटियरों पर लाठी-चार्ज होने की खबर सुना देते । इन बातों का चर्चा किसनलाल के सुरती मलते रहने तक ही रह पाता ।

कारोबार की कोठी में राजनीति के पचड़े का क्या स्थान ? ये बातें हैं, आवारा और बेकारों की । पर अब किसनलाल 'कण्ट्रोल और राशनिंग' की खबर सुनाते तो लम्बी बहस छिड़ जाती । सेठ जी भी बोलने लगते —"कण्ट्रोल से क्या हो जायगा ? अरे भाई, व्यापारी ने दाम लगाये हैं, वह दाम निकालेगा नहीं ? कोई अन्धेर है क्या ?............कहीं जबरन भाव लगते हैं ? बस नहीं है हमारे पास....है ही नहीं ! जाओ !"—लाला हाथ की उँगलियाँ हवा में नचाकर कहते, "उन्हें कोई नफा-नुकसान भरना है ? अफसरों की अपनी हजारों रुपये की तनख्वाहें खरी हैं । गवर्मेण्ट मन चाहे भाव खरीद सकती है....व्यापारी ऐसे थोड़े ही कर सकता है ? उसे तो बाजार-भाव खरीदना, बाजार-भाव बेचना । उसे दाम नहीं मिलेंगे, माल बाजार में लायेगा क्यों ? पड़ा रहने दो साले को । जिसे लेना होगा दाम देगा ?"

हरलाल गाली देकर बोल उठते—"......गवर्मेण्ट क्या खाकर बेच लेगी ? लेगी कहाँ से ? माल तो है व्यापारी के हाथ, भाव लगायेगी गवर्मेण्ट ?

''''ऐसा कभी हुआ है ?''''सरकार पहले अपना पेट तो भर ले ? करोड़ों मन तो फौज का खर्चा है। कोई अपना पेट काट कर दे क्या ? बाजार में माल है ही कहाँ जो गवर्मेंएट खरीद लेगी ?''

किसनलाल बोल उठते— ''गांव-गांव सरकारी खरीद होने की खबर है।'' हरलाल उचक उठते, ''तुम्हीं न जाओ गाव से खरीद लाओ ? अरे, जेठ में तो किसान चादर झाड़ बैठता है। यहाँ पूस-माघ में सरकार गांव से गल्ला खरीदेगी ?''

किसनलाल और छेड़ देते—''गल्ले की जब्ती की भी तो उड़ रही है !'' सेठ जी तैश में आ जाते''''जब्ती न हो गई, मज़ाक हो गया। गल्ले की जब्ती गवर्मेंएट करेगी ? पहले बजाजे की करे। कपड़े का भाव नहीं चढ़ा है क्या ? हर-एक के पांच-पांच हो रहे हैं ? बिसात का माल नहीं चढ़ा क्या ? करे, गवर्मेंएट जब्ती करे !''

''ऐसा कहीं हो सकता है ?''—हरलाल समाधान करने लगते, ''गवर्मेंएट ऐसा कहीं कर सकती है ? तब तो दुनियां ही पलट जाय। व्यापारी के माल की जब्ती करेगी तो टिकस कहां से लेगी गवर्मेंएट ? गवर्मेंएट का काम जान-माल की हिफाजत करना है''''''''''ऐसा होने लगे तो हुकूमत चल चुकी। यह सब बड़ी-बड़ी मिलें हैं'''''''''' ये मुनाफा नहीं ले रहीं क्या ?'''''''' सब को सरकार जब्त कर सकती है ?''''''''करे ? अन्धेर मच जाय''''।''—अन्याय के प्रतिकार के लिये वे उत्तेजित हो उठते।

रामगोपाल गरदन ऊँची कर सुनता रहता। वह स्वयं भी उत्तेजित हो उठता—बेचारे गल्ले और आढ़त के व्यापारियों पर सरकार कितना जुल्म कर रही है। कभी सेठ जी कोई कोठा-खत्ती बेच डालते तो खरीद के भाव से वर्तमान भाव की तुलना कर वह मन ही मन उत्साहित हो उठता।

कण्ट्रोल का पहला प्रभाव मिट गया। बाजार कट नहीं, गुप्त रूप से चल रहा था और फिर तेजी आ रही थी। गेहूँ बारह रुपया मन हुआ और अभी प्रतिदिन पैसा-दो पैसा चढ़ रहा था। दूसरे मुनीमों और रामगोपाल का माहवार खर्च महँगाई की वजह से बढ़ गया था। पहले केवल बीस रुपये महीने उसे मिलते थे अब सेठ जी ने छब्बीस रुपये कर दिये। बीस के छब्बीस हुये पर हाल पहले से भी बुरा था। तब साढ़े तीन-चार का आटा महीने में

निबटता न था, अब वह बात चौदह-पन्द्रह में नहीं हो पाती। सभी चीजों के दाम गल्ले की तरह, बल्कि उससे कहीं ऊँचे थे। यह सब संकट झेलकर भी दूकान में बैठते समय तेजी की खबर से रामगोपाल को स्फूर्तिमय उत्तेजना होती। कहीं उसके पास भी इस समय रकम होती...... एक कोठा कहीं उस ने भी ले लिया होता; बीस-पच्चास हजार बन गये होते! वह नहीं हो सका फिर भी तेजी से कौतूहल और स्फूर्ति होती ही थी—वैसे ही जैसे भयंकर बाढ़ का पानी गाँव की गलियों में चढ़ता देख गाव के बच्चे नया खेल आया समझ पुलकित होने लगते हैं।

× × ×

रामगोपाल गुड़मुरी मारे रजाई में लिपटा पड़ा था। नींद टूट जाने पर भी जाड़ा-सा मालूम दे रहा था। मन चाह रहा था तमाम रजाई अपने शरीर पर अच्छी तरह से लपेट ले परन्तु पीठ पीछे सोये भानू के उघड़ जाने के भय से निश्चल सिमटा पड़ा रहा। सोच रहा था—उठते तो पर जाड़ा है। पिछले बरस वह जल्दी ही उठ जाता था। विन्ध्या कुल्ला करने के लिये उसे जल का लोटा दे चूल्हा सुलगा देती। वह बच्चों के लिये टिकिया सेकती और रामगोपाल जरा आँच ताप लेता। कोठरी में ईंधन का सोधा-सोंधा धुआँ भर जाने से जाड़ा मालूम न देता। सुबह-सुबह रोटी बन जाती। गरम-गरम खा वह नौ बजे जा कर कोठी खुलवाता। अब सुबह आँच नहीं जल पाती। जले कैसे? मन ही मन उसने गाली दी—ईंधन........रुपये का चार पसेरी मिल रहा है—ईंधन न हुआ चन्दन हो गया। उपलों को क्या आग लगी है; पैसे के दो। यह भी क्या जंग पर जा रहे हैं? आटा रुपये का तीन सेर; पूरा पड़े तो कैसे?

रामगोपाल सुबह लैया-चने चबा दूकान चला जाता। बच्चे भी वही चबा लेते या माँ उनके लिये साँझ को शकरकन्द भून कर रख लेती। दोपहर बाद खूब अबेर से, तीन-चार बजे खाना होता। दोनो जून का एक ही बेर में निबट जाता। घर में जैसे भी निबाह लो पर बाहर दुनिया में आबरू रखना जरूरी है। कोई कुली-कहार तो हैं नहीं, कि चाहे उघाड़े फिरे। कोठी में मुनीम है। जाड़े के लिये उसने मोटे सूती चारखाने का कोट सिला लिया।

विन्ध्या को सर्दी से खाँसी आने लगती है। सोचा था, चारखाने का एक

सलूका उसके लिये भी हो जाता। गुन्जाइश न थी, सो हो नहीं सका। पर कलक रामगोपाल के दिल में बनी थी।

समीप ही दूसरी खाट पर मुनिया को लिये बिन्ध्या सो रही थी। घर में एक ही रजाई थी, बिन्ध्या के दहेज का। बिन्ध्या रजाई उसी की खटिया पर रख देती। स्वयम वह एक सूती कम्बल में पुरानी लोई जोड़, मुनिया को सीने से चिपटा, रात काट देती। रामगोपाल सोचता जाड़ा तो उसे भी लगता होगा, पर करे क्या? जब-तब ख्याल आ जाता और वह मन ही मन घिघने लगता! इस समय भी रजाई में सिकुड़े ऐसा ही ख्याल आ रहा था।

जान पड़ा गली में कोई पुकार रहा था—भैया रामगोपाल! ए मुनीम जी! भैया रामगोपाल हो! लच्छी की आवाज थी। किवाड़ों पर खट-खट भी सुनाई दी।

रामगोपाल ने उत्तर दिया—"कौन है; लच्छी है क्या?"—और पाव में उलझती लाँग सम्भाल, किवाड़ खोल पूछा, "क्या है लच्छी?"

धीमे स्वर में लच्छी ने कहा—"सेठ जी हवेली पर बुला रहे है। बड़े मुनीम जी और किसनलाल भी हैं। सब लोग आधी रात से हैं। बड़ा जरूरी काम है भैया! तुरत आ जाओ!.........समझे!"

"आते हैं।"—बेबसी से रामगोपाल ने उत्तर दिया।

आहट से बिन्ध्या की भी आँख खुल गई। अपने शरीर का कपड़ा लड़की को ओढ़ाते हुये उसने कहा—"हाय, हाय, किवाड़ तो बन्द कर दो! लड़की को हवा लग जायगी। उसे पहले ही से सर्दी हो रही है।"

रामगोपाल ने किवाड़ बन्द करते हुये कहा—"जल दो, कुल्ला कर लें। सेठ जी ने बुला भेजा है।"

बिन्ध्या उठी। खाट के नीचे कटोरे से ढकी लुटिया पाँव लग जाने से लुढ़क गई और कटोरी से कठोर झनकार गूँज उठी। उसके स्वर से रामगोपाल के शरीर में शीत से खड़ी हो रही रोम-राशि और भी सतर्क हो गई। वह झल्ला उठा—"अन्धी हो क्या?"

करुण स्वर में बिन्ध्या ने विरोध किया—"सुबह-सुबह कैसे बोल बोलते हो! अब अँधेरा है तो क्या करूं? लड़के को दो दिन तो तेल के लिये

भेजा। भीड़ में उलटे मार खा कर चला आया, नहीं मिला तो क्या दिये में अपना सिर दे दूं ?"

रामगोपाल जल का लोटा ले आगन में निकल गया। लौटा तो छोटी लड़की गुड़ के लिये जिद्द कर रही थी। उसे सुना बिन्ध्या ने कहा—"अब सुबह-सुबह कहाँ रखा है गुड़! कौन ले आता है मिठाई तेरे लिये जो रख दूँ सामने ?"

रामगोपाल समझ रहा था, उसी पर ताना है; पर उत्तर न दिया। कमीज पर रुई की पुरानी बराडी पहिनी, ऊपर से सूती कोट के बटन बन्द किये और चलने को हुआ। बिन्ध्या ने अँगोछा नहाकर कहा—"नून निबट गया है। ले आओगे तो आज को होगा।"

सेठ जी की हवेली की ड्योढ़ी लाघ रामगोपाल बैठक मे पहुँचा ही था कि शिकायत के स्वर मे मुनीम हरलाल ने स्वागत किया—"वाह पण्डित, अच्छे रहे! अब आ रहे हो? तुम्हारे भरोसे रहते तो जाने क्या हो जाता!"

सेठजी शाल ओढे मसनद के सहारे बैठे थे। नीद भरी लाल चिन्तित आँखें एक बार उन्होने रामगोपाल की ओर उठा दीं। इतना ही उसके लिये पर्याप्त था।

रामगोपाल की उपेक्षा कर सेठ जी, बड़े मुनीम और किसनलाल से बात करते रहे। हरलाल आयु के कारण पाली पड़ गई आँखों में, अनिद्रा की लाली लिये सफेद मूछों पर हाथ फेरते हुए कह रहे थे—"बड़ी मुश्किल से गोविन्द जी को राजी कर पाये भैया! हाशिम भाई तो टाले दे रहे थे। हम ने कही, चोखेलाल की खत्तियों की बात फैल गई तो बाजार तीन-चार आने की मंदी से खुलेगा''' '''सबके दिये जल जायंगे।" फिर बोले'''"भाई, जो गोविन्द जी कहैं अपना भी समझ लो!"

किसनलाल घुटनो के बल बैठ चादर कंधों पर लपेटते हुये बोले—"चले थे बेटा खत्ती भरने, कमसरियट की सप्लाई के ज़ोर पर। लाख मन चावल 'कण्डम' हो गया। इतने में दम निकल गया।''''''''''व्यापारी के गज़ भर का सीना होना चाहिये! बेटा औरों को भी ले डूबते!"

"गोविन्द जी भी, नाम तो इतना है"—हरलाल कहने लगे, "पर दिल

कुछ है नहीं।....चोखेलाल की बात सुनी तो लगे हाथ-पैर फूलने। और फिर बोले, "खिलवा के हाते की खत्ती हम नहीं लेंगे। सुन। है दो साल पुरानी है.........सुन रही है।"

सेठजी ने आशंका भरी दृष्टि हरलाल की ओर उठाकर पूछा—"तो क्या बिलकुल........?"

हाथ बढ़ाकर हरलाल ने उत्तर दिया—"अजी नहीं, और हुआ भी तो क्या; दो हज़ार मन !........एक खत्ती गई भी तो क्या ? बाज़ार में हल्ला हो जाता तो ? दस-बीस हज़ार मन का क्या पता चलता है इतने में ? रुपये में पाई-आधी-पाई ....।"

दीर्घ निःश्वास से आसन बदल सेठजी बोले—"तो फिर मुनीम जी कहारों को भेजकर ताले बदलवा दो न ! हां, ज़रा उस कोठे को भी देख लेना...!"

रामगोपाल ने समझा—चोखेलाल अढ़ाई लाख मन चावल की सप्लाई कमसरियट में कर रहे थे। कमसरियट के पेमेण्ट के ज़ोर पर लाला ने बहत्तर कोठे खत्ती का भाव पूरा का कर लिया था। हुण्डी तरने की तारीख आ गई और कमसरियट ने चावल 'कण्डम' कर दिया। सत्तर-अस्सी हजार मन गेहूँ कोई चीज होती है। बाजार से गल्ला निकल जाने के कारण भाव चढ़ रहा था। इतना गल्ला एकदम आ जाने से भाव गिरता नहीं तो क्या ?..........

रामगोपाल के मन में चोखेलाल के प्रति ग्लानि-सी भर गई—सेठजी का ही दिल है, हाशिमभाई और गोविन्द जी को मिला कर सब समेट लिया।

लच्छी और जमना कहारों से ताले उठवा रामगोपाल-चोखेलाल के कोठों पर अपने ताले गिरवाने चल दिया। चमनगंज, प्रेमनगर, एलनगंज और लाईनपार अहातों में घूम-घूमकर ताले बदलवाते दो बज गये। रामगोपाल के घुटनों तक और चेहरे पर धूल चढ़ रही थी। सूती कोट से भी पसीना छलकने लगा। चाबियों का गुच्छा काँख में दबाये वह नयागंज से लौट रहा था।

बाजार में पच्चीस-तीस आदमियों की एक टोली लाल कपड़े पर सफेद हंसिये-हथौड़े का झण्डा लिए और बांस की खपच्चियों पर लगे गत्ते के टुकड़ों पर 'मुनाफा-खोरी बन्द करो ! गल्ला चोरी बन्द करो !' लिखे, घूंसे उठा-उठा बावलों की तरह खुराफात चिल्ला रहे थे—'मुनाफाखोरों का गल्ला जब्त करो.........मुकम्मिल राशनिंग हो.........?'

भीड़ मे इस हुल्लड़ से रामगोपाल को राह नहो मिल पा रही थी। परेशानी से उसने कहा—साले कहीं के चोर-बदमाश..................मुनाफा बन्द करो ! मन ही मन उसे चिढ़-सी उठी—मुनाफ़ा बन्द हो जाय तो दुनिया कैसे चले ?

एक गली के मुहाने पर खड़े हो टोली के एक आदमी ने कन्धे से लटका बिगुल बजा दिया और कनस्तर पर खड़े हो दायें हाथ का घूंसा उठा लेक्चर देने लगा—"भाइयो, हम लोगों का गल्ला कहाँ गया ? गल्ला पैदा करने वाले किसान भी दाने-दाने को तरस रहे हैं। तमाम गल्ला मुनाफाखोरों ने समेट लिया। जब हमारे बच्चे भूखे मर रहे हैं, यह लोग लाखों-करोड़ों मन गल्ला कोठों और खत्तियों में भर कर हमें भूख से तड़पा रहे हैं। इनका मुनाफा कौम की मौत के मोल है। सब गल्ला जब्त होकर गरीबों को ठीक भाव से मिलना चाहिये। भाइयो, मुहल्ले-मुहल्ले गल्ला कमेटियां बनाओ। सरकार पर जोर डालो कि गल्ला आपकी कमेटियों की मारफत ठीक भाव पर बिके।"

एक ओर जगह देख रामगोपाल आगे निकल गया। मुनाफाखोरी के खिलाफ लेक्चर अब भी चल रहा था। उसके मन में हुआ कि हाथ में चाबियों का भारी गुच्छा उठा, लेक्चर देने वाले को अंगूठा दिखा दे—ले-ले गल्ला !

रामगोपाल ने सोचा कि दूकान पर चाबी देने जायगा तो और देर होगी ; पहले एक रुपये का आटा घर दे आये। एक दूकान पर जा कर पूछा। बनिये ने भाव बताया, पौने तीन सेर। रामगोपाल को धक्का-सा लगा—"क्या जुल्म करते हो लाला ?"—उसने अधीर स्वर में पूछा, "एक ही दिन में पाव भर बढ़ा दिया ?"

हाथ फैला, बेबसी दिखाते हुए लाला ने उत्तर दिया—"भैया, जिस भाव पाते हैं, बेचते हैं। बाजार में गल्ला है ही नहीं। कहां से लायें ?"

चाबियों के बोझ को दूसरे हाथ में बदलते हुए रामगोपाल ने साहस किया—"काहे, कण्ट्रोल की दूकान पर तो चार सेर का बिक रहा है ?"

"होगा भैया, बिकता होगा"—पीछा छुड़ाने के ढंग से लाला ने उत्तर

दिया, "अपने को कण्ट्रोल का भाव मिलता नहीं"·····देख लो। यहां है ही कहां? यह चुटकी भर रखा है। चौके में यों ही निबट जायगा।

ओंठ काटते हुए रामगोपाल ने सोचा, वह जरूर कण्ट्रोल की दूकान पर जायगा। सवा सेर का फरक कम नहीं होता!"·····साले बेईमान कहीं के! दूकान पर चाबियां उसने बड़े मुनीमजी के सामने रख दीं। खाते से आँख उठा उन्होंने पूछा—"सब देख-जोख लिया है न ठीक से?"·····घर नहीं गये थया? झपट के हो आओ? फिर तनिक हाशिम भाई के यहां काम है। तुरतै आ जाओ!"

भूख और मानसिक क्षोभ के कारण रामगोपाल चुप रह गया। मसनद के सहारे बैठे सेठ जी ने उसकी ओर देख कर कहा—"अब कहाँ जाओगे?" फिर हरलाल को सम्बोधन किया, "कहार से कह कर पूड़ी न गा दो!" पूड़ी के नाम से रामगोपाल के मुख में पानी आया ही चाहता था कि दिमाग में सुबह से भूखे जगन, मुनिया और विन्ध्या की याद उठ आई। कुछ कह न सका। मुनीम जी ने सिफारिश की—"नहीं घर हो आने दो, सुबह का निकला है!"

पुराने पम्पशू के तल्ले को फटफटाते रामगोपाल कलट्टरगंज की ओर चल दिया। कण्ट्रोल की दूकान अभी बन्द थी। हिन्दी-उर्दू के मोटे-मोटे अक्षरों में एक तख्ती पर लिखा था—गेहूँ १) का चार सेर। सामने सैकड़ों की भीड़ थी। कुछ लोग दूकान से बिलकुल सट कर बैठे थे। कुछ लोग बोरी या चादर का टुकड़ा लिये भीड़ के चारों ओर टहल कर प्रतीक्षा कर रहे थे। मैले से चदरे का टुकड़ा कांख में दबाये, भीड़ से बच कर खड़े, अपने ही जैसे, अपेक्षाकृत एक भलेमानुस को सम्बोधन कर रामगोपाल ने पूछा—"दूकान खुली नहीं अभी?"

समीप खड़े दूसरे आदमी ने उत्तर दिया—"अभी कहां, साढ़े चार बजे हवलदार साहब आ कर खुलवायेंगे।" भीड़ की ओर संकेत कर गाली दे उसने कहा, "सब साले भुक्खड़ कहीं के! मार-पीट करने लगते हैं। देखो तो, ससुर दिन चढ़े से आ बैठे हैं।"

भीड़ के किनारे बैठे एक जर्जर, पिंजर-मात्र शरीर बूढ़े ने आवाज ऊँची कर उत्तर दिया—"बैठे नहीं तो क्या?"·····"कल हम दोपहर में आये और

हमारे बाद आये लोग हमें ढकेलकर, लेकर चले गये। हमे मिला ही नहीं। पाच-पाच जने खाने वाले हैं। आज हमें किसी साले ने धक्का दिया तो हम ईंट मार साले का सिर फोड़ देंगे। चाहे फासी हो जाय; और क्या ?"

उसका उत्तर देने दस-पाच खड़े हो गये—"बड़े आये सिर फोड़ने वाले। देखें किसके सीने पर बाल हैं ? हम सुबह से बैठे हैं। हम सब से पहले लेंगे ?"

भीड़ में दबी एक बुढ़िया ने दोनों हाथ उठा कर कहा—"अरे भैया, हम सब से पहले आये थे। देखो, धक्के देकर हमें कहा हटा दिया और सब लोग आगे हो गये। हमारे इत्ते-इत्ते बच्चे हैं, कल के भूखे ! हमें कोई दिला दो, हवलदार साहब ! हुज़ूर के बच्चे जीते रहें !"

बावेला सा मच गया। किसी ने पुकारा—"देख लो हवलदार साहब, अभी से ये लोग दंगा कर रहे हैं ! हम कह देते हैं, हाँ !"

दूसरी ओर से हाथ भर का डण्डा उठा चिल्लाकर हवलदार साहब ने ललकारा—"ऐसे किसी को नहीं मिलेगा। चलो, सब लोग लैन डोरी करो !"

रामगोपाल के समीप खड़े, अपेक्षाकृत भलेमानुस दिखाई देने वाले आदमी ने कहा—"कल लड़के को भेजा था। लौंडा खाली हाथ लौट आया। आज आधी दिहाड़ी बिगाड़ कर आये थे, सो यहाँ कुछ मिलता दिखाई नहीं देता। इस से तो भैया पौने तीन सेर का भला; दिहाड़ी तो कर लेते हैं। अपने तो चल दिये।"

उसके सुर में सुर मिला दूसरे आदमी ने समर्थन किया - "कुल पाच बोरी तो गल्ला आता है, यहाँ पाच सौ मुण्ड जुड़े हैं।" रामगोपाल भी लौट चला और एक गली के मोड़ पर बिना बहस किये, एक रुपये का आटा अंगोछे में बांध, घर देने गया।

बिन्ध्या कोठरी के दरवाजे से गली में आख लगाये, रोती हुई मुनिया को गोद में लिये समझा रही थी—"चाचा अभी आयेंगे, बाजार से चून लायेंगे, दाल लायेंगे, गुड़ लायेंगे; शकरकन्दी लायेंगे।" उसकी आँखों से उद्विग्नता और बेबसी बरस रही थी। रामगोपाल के हाथ से आटे की गाठ ले लड़की को एक ओर छोड़, वह थाली में आटा मांड़ने लगी। रामगोपाल मुँह से कुछ

न बोला, दीवार के साथ पड़े चटाई के टुकड़े पर बैठ नजर गली की ओर किये रहा ।

चूल्हे से दाल की बटुई उतार बिन्ध्या ने एक ओर टिका दी और बुझी हुई लकड़ियों को फूंक कर प्रज्वलित किया । रोटी तवे से उतरने से पहले ही मुनिया समीप आ बैठी । कटोरी में कलछी भर दाल का पानी डाल, बिन्ध्या रोटी मुनिया के हाथ में दे रही थी कि गली में लट्टू खेलना छोड़ भानू दौड़ा आया—"हम लेंगे, पहले हम लेंगे । मुनिया पहले दाल भी खा चुकी है हां, हम पहले·····।"

बिन्ध्या ने रोटी के दो टुकड़े कर लड़के-लड़की को बांट दिये और रामगोपाल की ओर देख कर बोली—"तुम भी थाली उठा लो, यह हो गई रोटी । सुबह से जल का घूंट भी गले से नहीं उतरा ।"

रामगोपाल की आँखों के सामने अब भी बनिये की वह सूरत नाच रही थी—पौने तीन सेर·········तो क्या दे दें भैया ? जैसा पाते हैं, बेच देते हैं—बाजार में है ही नहीं । और तब स्वयम उसके ही हाथ में हजारों मन की चाबी थी ।····फिर कण्ट्रोल की दूकान के सामने की भीड़ !

सेठ जी उसे पूड़ी खिलाने को तैयार थे पर घर पर उसके बच्चे और उन की मां ?····आग लगे ऐसी पूड़ी को·········अपने बच्चों को, इतने लोगों को भूखा छोड़ कर पूड़ी········।

और तब नयागंज में लाल झण्डा उठाये—"मुनाफाखोरी हराम है" चिल्लाने वाले उसकी आँखों के सामने फिरने लगे । अब उन्हें मन में गाली देकर अँगूठा दिखाने की बात नहीं सोची । कनस्तर पर खड़े होकर लेक्चर देने वाले की बात याद कर एक गहरा निःश्वास छोड़ उसने कहा, अरे सुनता कौन है, सब अपने-अपने मरे जा रहे हैं । उसे ऐसा जान पड़ने लगा—जैसे वह अपने बच्चों की भूख की याद से पूड़ी ठुकरा कर चला आया, वैसे ही वे लाल झण्डे वाले सब गरीब लोगों की फिक्र कर रहे हैं·········पर सुनता कौन है ?

बिन्ध्या ने थाली में पतली दाल छोड़ एक गरम रोटी रख दी । लुटिया से हाथ धो, रामगोपाल गुस्सा तोड़ने को ही था कि बिन्ध्या ने पूछ लिया—"क्या भाव मिला चून ?"

रामगोपाल को फिर पौने-तीन सेर देने वाले बनिये की याद आगई—कहा से लायें, बाजार में है ही नही………………और इस समय उसके अपने हाथ में ही हजारो मन की चाबियो का गुच्छा था। उसने मन मे गाली दी………बाजार तो ससुर भरा पडा है। चोर कहीं के, दबाये बैठे हैं। और समझ आया कि इस सबके परिणाम में ही कण्ट्रोल की दूकान के आगे की भीड़ है। उसे जान पड़ा—यह है उसकी रोटी का मोल ?

आँखे कुछ डबडबा-सी गई इसलिये विन्ध्या की ओर से फेर लीं। सोचता रहा—इस मोल रोटी पाते हैं, नहीं तो यह भी जाये। रोटी पा सकने के लिये ही वह अपनी रोटी से हाथ धो रहा है……घुनने के लिये अनाज खत्तियों में भर रहा है।



छलिया नारी

'आस निरास भई............' लय से गुनगुनाते रहना और आहें भर कर जीवन का दुख प्रकट करना नन्दो को नहीं आता था। दुख को रोचक और प्रभावोत्पादक रूप में प्रकट करना वह नहीं जानती थी। रसोई में बैठी, घुटने पर सिर टेके या कोई दूसरा काम करते समय वह गहरी उदासी से सोचती रहती''''हाय, कैसे कटेगी? उसके प्रत्येक दिन का आरम्भ निराशा के अंध-कूप में एक और सीढ़ी उतर कर होता था।

और पाँच मास पूर्व? उसका जीवन उत्साह से वैसे ही बुलबुला रहा था जैसे नदी की पतली, क्षीण परन्तु सजीव धारा अपने स्रोत पर बुलबुलाती है। ये बातें किसी से कहने की न थीं परन्तु हृदय में तो सब कुछ था। जब और लोगों की तरह संसार में उसने जन्म लिया है तो उन्हीं की तरह पुलक और उत्साह से भरे जीवन के मार्ग में उसके लिये स्थान क्यों न होगा? जीवन के इस मार्ग पर पाँव रखने से पहले उस के मन में उमंग क्यों न उठती? कल्पना क्यों न जागती?

नन्दो को जन्म दे देने से पहले उस के माँ-बाप ने उससे कोई राय न ली थी तो जीवन के मार्ग पर उसे चला देने के लिये ही उसकी राय की क्या जरूरत थी? नन्दो का जीवन उस के माँ-बाप के जीवन का अंग था। उससे पूछे बिना उसे जन्म दे, पाल-पोस जब उन्होंने इतना बड़ा कर दिया तो आगे भी वे सब कुछ कर सकते थे और कर ही तो रहे थे।

शरीर में फूटने वाला जोबन मन मे कैसे न फूटे ? शरीर मे उठते जोबन के चिन्हों को दबाया-छिपाया नहीं जा सकता परन्तु मन में फूटती जोबन की कली को छिपाया और दबाया जा सकता है। वही नन्दो ने भी किया। चुप-चुप वह मन ही मन सोचा करती—गाँव की और सब लड़कियो की तरह एक छैला दूल्हा एक दिन उसे भी डोली में बैठा कर सुसराल ले जायगा। जहाँ वह मेंहदी रचायगी, रंगीन साड़ी पहनेगी और बहुओं के जमघट में मुँह से मुँह मिला, ऊँचे स्वर में सोहर, सावन और लाचारी गायगी। कहीं उसके लिये भी सुसराल का घर है ज़रूर। उसे मालूम नहीं कहां ?………… पर उसके माँ-बाप को तो मालूम है।

बिन्दो, सत्तो, राधा, ज्वाला कितनी ही सहेलियों के दूल्हे उसने देखे थे। गाव की बाट आते-जाते कितने ही जवान और मेले मे कितने ही शौकीन बाबू उसकी ओर तकने लगते। उनमें से ही कोई न सही परन्तु उन जैसा ही कोई एक छैला एक दिन उसे लिवाने आयगा। यौवन की फूटती कली से कल्पना की सुगन्ध उठ उसके मन को मुग्ध कर देती।

फिर गांव में उस के ब्याह की बात भी फैल गई थी। उस से किसी ने न कहा सही परन्तु सुन तो उसने भी लिया कि 'वह' शहर में बाबू है। स्वयम् ही उसने समझ लिया—शहर के सुन्दर सलोने बाबू, आराम से रहने वाले रसिया। वह ऐसा समझती क्यों न ? जीवन की सब से बड़ी वस्तु 'पति' की कल्पना सब से सुन्दर क्यों न हो ?—क़द्दावर, सलोना, हँसमुख और रसिया, बोल में मिसरी घुली हुई। अपनी आशा और कल्पना पर उसे इतना निश्चय और भरोसा था कि 'द्वारचार' के अवसर पर उसने आँख उठाकर देखने की ज़रूरत नहीं समझी…………जन्म भर देखना ही था।

पराई चिन्ता करने वाली औरतों के मुँह से अपने पति के रूप-गुण की बात उसने जो कुछ सुनी, वह उसे भायी नहीं। ऐसे बकने से क्या होता है, उसने सोचा। ऐसा कभी हो सकता है ?

सुहागरात आई। विनोदसिंह की बूढ़ी बुआ बहू को कोठरी में बैठा गई। नन्दो समझ गई—जीवन का सबसे उत्कट और तीक्ष्ण क्षण आ पहुँचा। जीवन का रहस्य-मय द्वार खुलने वाला था। जीवन के देवता और परमेश्वर का साक्षात्कार होने वाला था। खाट की पटिया पर सिर टेके वह फ़र्श पर

बैठी थी। उसके कान, आँखें और रोम-रोम प्रतीक्षा और आशंका से सिहर रहे थे। जान पड़ता था, प्रतीक्षा के वे पल जैसे कभी समाप्त न होंगे पर कदमों की आहट एक दफे सुनाई दे जाने के बाद''' वे पल ऐसे उड़ गये कि सम्भालने का भी अवसर न मिला।

उसी खाट पर उन के आ बैठने से वह ऐसे हिल गई जैसे भूकम्प आ गया हो। थोड़ा खाँस कर उनके वे पहले शब्द !''''रोम-रोम जिन्हें सुनने के लिये प्यासा था''''अप्रत्याशित से जान पड़े। उनमें मिसरी नहीं घुली थी बल्कि जैसे कुल्हाड़ी का प्रहार आ पड़ा हो।

उन्होंने कहा—"देखो जी, इस घर में अदब, क़ायदे और पर्दे से रहना होगा, समझीं !''''''''यह गांव नहीं शहर है।"

सहसा नन्दा की कल्पना बदल गई। वह आशा और कल्पना कर रही थी—उन्माद में आँखें मूंद लेने की ? एक ठोकर ने उसकी आँखें खोल उसे स्तब्ध कर दिया।

× × ×

पहली मुलाक़ात का असर बुरा होता है, रोब उसी दिन जमा लेना चाहिये—बुज़ुर्गों के अनुभव की यह बात विनोदसिंह सुन चुका था। पहली रात की पहली मुलाक़ात में ही दृढ़ता से व्यवहार करने का निश्चय उसने किया था। उसके रिश्ते में सबसे अधिक दब-दबा अपनी स्त्री पर कल्याण-सिंह का था। औरत ने मर्द के सामने कभी चूं तक नहीं की थी। कारण था, वही पहली रात की सावधानी।

कल्याणसिंह चतुर आदमी थे। पहली मुलाक़ात में भी अपना बुलबुल साथ ले गये। बुलबुल ने शरारत से पर फड़फड़ाने शुरू किये। कल्याणसिंह ने एक धौल बुलबुल की पीठ पर दी। बुलबुल चोंच खोल कर रह गयी। चबनी की बुलबुल गई तो क्या ? कल्याणसिंह की बहू समझ गई—कितने सख़्त आदमी से पाला पड़ा है। उम्र भर उसने चूं नहीं की।

विनोदसिंह से इतना न हो सका पर यह समझा देना जरूरी था कि जोरू के गुलाम बने रहने वालों में वह नहीं है। मन के उद्गार को समेटे परन्तु संक्षिप्त से शरीर को फैला कर वह पलंग पर लेट गया। मानो, गैतावे

रखी या बैठी चीज ऐसी नहीं कि उसकी कोई परवाह उसे हो। नन्दो को सब से पहले परिचय हुआ पति के चरणों से। उसके गालों पर आँसू बह चले। विनोदसिंह ने करवट बदली। खाट के इस दफे हिलने से नन्दो के शरीर में रोमांच नहीं हुआ।

"अच्छा गोड़ दबाओ।"—नन्दो को सुनाई पड़ा। संकोच और भय को वह अभी बस न कर पाई थी कि डाँट सुनाई दी, "सुनती हो कि नहीं...?"

नन्दो के आँसू विनोदसिंह के पाँव पर टपक पड़े। अपनी डाट का सफल प्रभाव देख वह बोला—"यह सब तिरिया-चरित्तर यहाँ नहीं चलेंगे!......रोने का मतलब?"

खेल छोड़ कंडे पाथने को वैसे मा-बाप ने भी कई दफे डांटा था, मार भी पड़ी थी; पर दिल यों कभी न टूटा था। वे हड़ीले, खुरदरे पाँव, जिनसे जूते के चमड़े की तीखी-तीखी गंध आ रही थी, सूखे कंडों से अधिक सुखदायक स्पर्श उन का न था। नन्दो ने आँखें उठा कर शेष शरीर की ओर देखा भी नहीं; कोई कौतूहल भी उसे न हुआ। उसके आँसू विनोदसिंह के पाँव की अबरी की-सी फटी-फटी त्वचा पर टपकते रहे।

विनोदसिंह के मन में उमंग ने जोर मारा। गला पिघल गया। पुचकारा —"रोओ मत, रोती क्यों हो?" नन्दो की कलाई पर उसका हाथ जा पड़ा। इन हाथों का स्पर्श पांव के स्पर्श से अधिक सरस न था। सुख का स्वप्न समाप्त हो चुका था। आँखें मूंद और होंठ काट उसने निश्चय किया—उसे सहना है।

× × ×

जीवन की उठती उमंग, जीवन की समाप्ति से मुक्ति की चाह में बदल चुकी थी। जिस काम के लिये उसे लाया गया था सिर झुका कर उस उपयोग में वह आ रही थी। कल्पना के संसार और वास्तविक जीवन का अंतर एक ही बात में स्पष्ट हो गया—वह आई नहीं थी, उसे लाया गया था। तो फिर उसकी 'इच्छा' कैसी? 'इच्छा' तो है उसे लाने वाले की।

जब दोनों हाथों में मुंह छिपा, घुटने पर सिर टेक वह सोच में डूब जाती, विनोदसिंह का हड़ैला, ठिगना शरीर, पक्का सांवला रंग, बड़ी-बड़ी मूंछें और

आगे बढ़े हाथ सब लोप होकर उसे केवल दिखाई देने लगता एक गिद्ध गांव के बाहर के खेतों में सूर्य निकलने से पहले उसने कई बार गिद्धों व निश्चेष्ट शव पर तृप्ति के लिये चोंचें चलाते देखा था। उसे जान पड़ता जैसे उसका इच्छा-रहित शरीर निश्चेष्ट शव है और विनोदसिंह एक गिद्ध

वह मर ही जाय तो क्या?.........जब तक वह जीवित रहेगी यह यातना जीवन में बनी रहेगी.......बिना मरे इस से मुक्ति नहीं परन्तु क्या मर जा के लिये ही वह पैदा हुई थी... बिना कुछ पाये ही....बिना कुछ देखे ही?

आंचल में मुंह छिपा रोने से उसे सान्त्वना मिलती थी पर जी भर पाने की स्वतंत्रता भी उसे न थी। बुआ दिन की नींद से चौंक कर या पड़ो की गमी-खुशी से लौट कर उसे रोता देख बिगड़ कर गाली देने लगती- "यह क्या कुलच्छन दिहात से लेकर आई है?.........किसे रोती है?... रोना तो अपने पैदा करने वालों को रोये!" नन्दो गले में भरे आंसुओं को हिच कर पी जाती। एक दिन बुआ भी चली गई। दो दुःखों में आने वाले पर्ि वर्तन का अवसर भी जाता रहा।

× × ×

रात में आराम और सुबह भोजन पा विनोदसिंह दफ्तर चला जाता इसी काम के लिये वह नन्दो को लाया था। नन्दो रात की यातना औ दिन का निरादर लिये निर्विघ्न रोती और रोकर आने वाली संध्या के लि रसोई और रात के लिये दिल कड़ा करती। वह सोचती—यही जीवन है आँसुओं की झड़ी में से बिखरी हुई कल्पना की किरणें कभी कभी इन्द्र-धनु की भांति झलक उठतीं। बेतुकी बातों की याद आ जाती। मेले में देखे कि सुडौल नौजवान की गुलाबी आँखें!....गांव के कुएँ पर उसके लिये जगमोह का प्रतीक्षा करना। एक दिन उस ने कहा था—नन्दो, तुम्हारे लिये शहर टिकुलिया और चूड़ी लाये हैं, लोगी? बायें हाथ का अँगूठा दिखा उस उत्तर दिया था—ए है, बड़े आये लाने वाले। लाला से कह दूंगी!

राह में लौटते समय वह सोचती आई—बदमाश मुडचिरा कहीं व पीछे पड़ा है। आज वह सोचती—जगमोहन दिल से उसे कितना मानत था, चिरौरी करता था। वह अहंकार से झल्ला उठती थी। अब वह कु रह ही नहीं गया। एक गहरी सांस सीने से उठ आती।

नन्दो सोचती, वह मर जाय। फिर सोचती—हाय इतनी छोटी-सी उम्र में वह कैसे मर जाय, क्यों मर जाय ?''''और चली जाय तो कहां,?''''कहीं भी।''''उसे सब कुछ सह्य है।''''शारीरिक पीड़ा, भूख, सब कुछ। परन्तु यों निश्चेष्ट हो कर नोचा जाना नहीं।

घर के दरवाजे पर लटकी चिक से गली का जितना भाग दिखाई देता था उससे अधिक संसार उस ने देखा न था। जाय तो कहां ? परन्तु उस अनजाने भयंकर संसार में मृत्यु से अधिक भयंकर तो कुछ नहीं ? इस निरंतर यातना से वह भी अच्छी। कई दफे उसने निश्चय किया—अपने आपको कसाई के इस काठ से हटा कर संसार के भँवर में डाल दे। दिन भर वह अपने आपको तैयार करती परन्तु दहलीज पर पहुँच पांव ठिठक जाते। वह रोने लगती। साहस आँसुओं में बह जाता। फिर वह रात में यातना का शिकार बनती और भाग निकलने का साहस न कर पाने के लिये पछताने लगती।

आखिर एक दिन रात का विचार दृढ़ रखने के लिये, पति के दफ्तर चले जाने के बाद, उसने होंठ दबा आँसू न बहाने का निश्चय कर लिया। रुके हुए आँसुओं की भाफ के जोर से उसके कदम घर से निकल पड़े। सकपकाते कदमों से चलती वह शहर के बाहर नदी के किनारे जा पहुँची। नदी में डूब मरने के लिये नहीं, एक दफे जीवन का उन्मुक्त श्वास स्वतंत्रता से हृदय में भर पाने के लिये।

× × ×

नन्दो के गायब हो जाने की चोट से विनोदसिंह सुन्न रह गये। नन्दो का वियोग था परन्तु उससे अधिक था, स्त्री के भाग जाने का अपमान। क्रोध से उस का मस्तिष्क फट जाना चाहता था। उस के घर से भाग जाने का विचार यदि मालूम हो जाता तो स्त्री भाग जाने के कलंक के बजाय वह उसे कत्ल करने का अपराध ही अपने सिर लेता। ऐसी पापिन, दुष्टा को वह भला प्रेम कर सकता था।

दिन बीतते गये। नन्दो के वियोग में दिन, सप्ताह और मास बीतते जाने पर, नन्दो से मिलने वाले सुख विनोदसिंह को याद आने लगे। रसोई में जब आंखों में धुंआं भर जाने से आँसू टपकने लगते उसे नन्दो की याद आ जाती। चौमासे की गरमी में जब उमस से नींद न आ पाती तब याद आता,

इस समय नन्दो आहिस्ता-आहिस्ता पंखा झुला कर उसे सुला दे सकती थी। पांवों और बदन में एक टीस-सी उठने लगती जिसकी औषध नन्दो के हाथों के स्पर्श में थी।

बदन पर फूली घास को सहलाते सहलाते, नींद की प्रतीक्षा में बिनोद-सिंह सोचने लगता—कुल्टा का कोई लच्छन तो उस में कभी दिखाई नहीं दिया?""""तो वह चली कैसे गई?"""" क्या यहां अकेले घबरा गई?"""" """"दिल उसका उदास हो गया?

किसी अप्रत्यक्ष युक्ति से नन्दो के प्रति क्रोध के बजाय करुणा और सहानुभूति की भावना उसके मन में उठने लगी। सोचने लगता"" यदि एक दफे वहीं उसे देख पाता तो यत्न से बुला लाता और फिर कभी दुखी न होने देता। नींद न आने पर नन्दो के बिना, ऊँची मुंडेरों से घिरी छत उसे भयंकर जान पड़ने लगती। नींद में करवट बदलते समय कोई सहारा न पा नींद उचट जाती। उसका हृदय नन्दो के लिये रो उठता।

ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा। नन्दो के विरह की तीव्रता बढ़ने लगी। उस के अभाव की निरंतर अनुभूति में नन्दो बिनोदसिंह को देवी जान पड़ने लगी। वह उसका पुजारी बन दिन रात उसकी लौ लगाये रहने लगा। स्वप्न में वह देखता—नन्दो बनकी पगडन्डी और नदी तट पर बाल खोले सूनी आँखों से भटक रही है"""जोगिन भेष बनाये, तन भस्म रमाई।

सूना घर उसे काटने लगा। संध्या समय वह महावीर जी के मन्दिर की आरती में जा बैठता और कीर्तन समाप्त होने तक वैराग्य के गीत गाता रहता। प्रातः उठ वह नदी स्नान करने चला जाता। नदी के गंदले, बरसाती जल में स्नान करने से उसे शान्ति लाभ होती। मन की शांति के लिये वह प्रवाह की ओर आंखें लगाये मुख से भगवान का नाम जपता रहता परन्तु आँखों के सामने लहरों पर उसे दिखाई देता—नन्दो का जोगन भेष धरे शांत रूप।

×　　×　　×

उस सावन की पूनो को नदी स्नान करने वालों की भीड़ अधिक थी। भीड़ से बिनोदसिंह को क्या मतलब? वह नीचे की ओर नदी किनारे अपने ध्यान में मग्न था। अचानक सुनाई पड़ा—"पकड़ो, अरे पकड़ो! बह गई, बह गई!"

सामने ही विनोदसिंह को गोते खाती एक स्त्री दिखाई दी। नित्य तैरने के अभ्यास के कारण उसने आसानी से स्त्री को जा पकड़ा। स्त्री स्वयम तैरने का यत्न कर रही थी परन्तु नदी के तेज बरसाती प्रवाह में बेबस हो गई थी। सिर के भीगे केशों ने मुख पर लिपट कर उसे अंधा बना, पगला दिया था। आसरा पा वह सम्भल गई। सहारे के लिये अपना एक हाथ उसने बचाने वाले के कंधे पर रख दिया। वे किनारे की ओर मुड़ने लगे। स्त्री ने दूसरे हाथ से अपने मुख पर फैले बालों को हटाया। उसकी दृष्टि बचाने वाले के मुख पर पड़ी। दोनों की आँखें चार हुईं।

भय से आर्त एक चिल्लाहट स्त्री के मुख से निकल गई।

प्राण बचाने वाले का सहारा छोड़, पूरी शक्ति से वह नदी की तेज़ धार की ओर लपक चली। विनोदसिंह बेबसी में पुकार उठा—"नन्दो!"

परन्तु नन्दो हाथ से निकल चुकी थी। गंदले तीव्र प्रवाह में उसके लहराते केशों की एक झलक दिखाई देकर समाप्त हो गई। लहरें उसे निगल गईं।

क्रुद्ध, असफल हिंसक पशु की तरह लाल आँखों से विनोदसिंह नदी की उमड़ती धार की ओर देख रहा था। प्राण देकर उसे अपमान की चोट लगा जाने वाली के प्रति उसका मन आत्मग्लानि से जला जा रहा था—अविश्वसनीय, छलिया नारी! वह कभी किसी की हुई है?



चार आने

निन्दौर के राजा साहब को खेलों से विशेष शौक था। दूसरे तालुकेदारों और बड़े बड़े आई० सी० एस० अफसरों की देखा-देखी वे अपने सेक्रेटरी के साथ जीमखाने का टेनिस टूर्नामेण्ट देखने गये थे। खेल की पैंतराबाजी में बड़े-बड़े अफ़सरों और रईस लोगों के चेहरे प्रसन्नता से चमकते देख, उन लोगों के मुख से निरन्तर वाह-वाह सुन, राजा साहब को भी खेल से दिलचस्पी होने लगी।

सेक्रेटरी के कहने से राजा साहब ने इकहरे (singles) खेल के मुख्य विजयी के लिये ट्राफी (विजयपात्र) की घोषणा कर दी। खेल समाप्त होने पर दूसरे बड़े आदमियों की तरह उन्होंने भी खिलाड़ियों से हाथ मिलाया। राजा साहब को सन्तोष अनुभव हुआ, एक उचित काम किया गया।

तीसरे दिन सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को अंगरेजी का अखबार लाकर दिखाया। उस में राज साहब का चित्र था। चित्र में वे टेनिस के इकहरे खेल के विजयी खिलाड़ी मिस्टर इर्शाद से हाथ मिला रहे थे। समाचार पत्र के दो कालमों में, राजा साहब की क़द्रदानी और उदारता की प्रशंसा के साथ खिलाड़ी को विजयपात्र देने का समाचार छपा था। तब से टेनिस के खेल के प्रति राजा साहब के अनुराग की सीमा नहीं रही।

टेनिस के खेल सम्बन्धी अंग्रेजी शब्द निरन्तर उनकी जिह्वा पर रहते। टेनिस के बल्लों (रैकेटों) के वज़न और गेंद बनाने वाली कम्पनियों के

नाम उन्हें याद हो गये। किसी भी समाचार-पत्र में, किसी भी स्थान पर टेनिस मैच का समाचार प्रकाशित होने पर वे उसे पढ़ने या पढ़ाकर सुन लेते। सफ़र में आधा दर्जन बढ़िया टेनिस रैकेट उन के साथ रहते। मसूरी में रहते समय खिलाड़ियों का धारीदार कोट अपने स्थूल, शिथिल शरीर पर कसे वे प्रत्येक सन्ध्या छः आदमियों से ढकेली जाती रिक्शा पर सवार हो, टेनिस के मैच में पहुँच जाते। वे टेनिस के संरक्षक समझे जाने लगे।

इर्शाद हुसैन के लिये जीवन की सब से मूल्यवान् और प्रिय वस्तु थी उस का टेनिस का रैकेट। ऊँची कीमत का वह रैकेट इर्शाद को कॉलेज-टूर्नामेण्ट में विजयी होने के पुरस्कार में मिला था। इस रैकेट की बदौलत सम्मानित समाज के बड़े-से-बड़े अधिकारियों तक उसकी पहुँच हो पाती थी। बड़े-से बड़े आई० सी० एस० अफ़सर, सर और ताल्लुक़ेदार मुस्कराकर उस से हाथ मिलाते। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में कोई चमत्कार न दिखा सकने पर भी उसका आदर और महत्व था। उसके अपने घर में समृद्धि न होने पर भी समृद्ध लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते। जस्टिस विकसन ने उससे हाथ मिलाया तो कलक्टर साहब ने भी शेक-हैण्ड किया। राजा साहब बिन्दौर ने उसे 'कार्लटन' होटल में चाय पीने के लिये निमंत्रित किया तो बिल्लूर के नवाब साहब ने भी उसे 'रायल' में बुलाया।

टेनिस के ज़ोर पर समाज में सम्मान पाकर भी इर्शाद हुसैन के जीवन की समस्या हल न हुई। वह घर में बड़ा लड़का था। घर के बोझ को सिर लिये बिना चारा न था। इर्शाद के पिता के समय प्रश्न था, घर और ख़ान्दान की इज्जत की रक्षा का। नवाबी के समय के जीवन-साधन अब न रहे थे परन्तु खान्दान की इज़्ज़त चली आती थी। इर्शाद के पिता, मियां शहनशाह हुसैन, जजी में पेशकार थे। इस नौकरी से उन्होंने घर को बहुत संभाला। भाइयों को तालीम दी, घर का मकान क़ुर्क होने से बचाया। इर्शाद हुसैन के तीनों चाचा घर का क़र्ज़ और इज्जत बड़े भाई के सिर ओढ़ा, एक के बाद एक अलग जा बसे। मियां शहनशाह हुसैन को इर्शाद हुसैन से बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं परन्तु उन उम्मीदों के पूरी होने से पहले ही अल्लाताला ने उसे अपने पास बुला लिया।

कहावत है—शेर भूखा मर जाता है, घास नहीं खाता। वैसे ही खान्दान

शरीफ़ इन्सान भूखा रहकर भी समाज में अपना सिर नीचा नहीं होने देता। मियां शहनशाह हुसैन की मृत्यु के बाद घर के भीतर सैकड़ों मुसीबतें सहकर भी इर्शाद और उनके छोटे भाइयों की तालीम जारी रही। घर की औरतों के बाहर निकलने का काम न था। कभी वे घर से निकलतीं तो पर्दे में। टाँगा बिल्कुल ड्योढ़ी से सटाकर खड़ा किया जाता। दूधिया सफ़ेद चादरें टांग के आगे-पीछे तन जातीं। बैठक में कभी मेहमानों के आने पर बेगम साहिबा चांदी की कामदार तश्तरी में पान और खुशबूदार तम्बाकू भेजना न भूलतीं।

कुंजड़े घर की ड्योढ़ी पर आवाज लगाते तो भीतर से कहला दिया जाता—भई, सब्ज़ी बाजार से आ गई है। मछली वाली को उत्तर मिलता—गोश्त ले लिया गया। कसाई आवाज़ लगाता तो उसे उत्तर मिलता—मछली ले ली गई। फेरी बेकार होने पर इन लोगों ने पुकार लगाना छोड़ दिया। पान-ढोली वाले की फेरी बन्द न हुई। उधार के लिये झंझट होती थी परन्तु घर में पान का खर्च बन्द न हो सकता था।

मियाँ शहनशाह हुसैन पर वर्षों से लाला महादेवप्रसाद का तीन हज़ार का कर्ज़ था। मियाँ साल-छः महीने में सूद की रकम किसी न किसी तरह अदा कर ही देते थे। उम्मीद थी, लड़के के बरसिरे रोज़गार हो जाने पर कर्ज़ अदा कर देंगे और अपने पुश्तैनी मकान को नये सिरे से बनवायेंगे। मियाँ शहनशाह हुसैन की मृत्यु के बाद सूद की रकम मूल में मिलने लगी। चतुर लालाजी ने पिता के कर्ज़ के कागज इर्शाद हुसैन के नाम बदलवा लिये। सूद का दर कम कर देने के लिये मकान गिरवी हो गया। लालाजी स्वर्गीय मियाँ शहनशाह हुसैन की स्मृति का ख्याल कर, उनके बेटे से ७००) सालाना सूद के बजाय मकान के किराये के रूप में ६००) रुपया लेने लग गये।

पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाने का दर्द इर्शाद और उनकी वालिदा दोनों को ही कम न था लेकिन सूदख़ोर महाजन से मुक़द्दमेबाज़ी कर कचहरी जाने की बेइज़्ज़ती कैसे बर्दाश्त की जाती। मकान के हिस्से में बसने वाले किरायेदारों से मिलने वाले किराये और महादेवप्रसाद को दिये जाने वाले किराये के अंतर से ही, किसी तरह ढक-ओढ़ कर, शरीफ़ खानदान का गुज़ारा चलता था। ज़ाहिरा हवेली उन की ही थी। लाला महादेवप्रसाद शरीफ इन्सान ठहरे। उन्होंने वायदा कर लिया था, पाँच-छः बरस, अब तक

इर्शाद बी० ए० पास कर कहीं नौकरी नहीं कर लेते, वे इस मामले में कुछ न बोलते।

बी० ए० पास कर और टेनिस के मैदान में नाम कमा लेने पर भी अच्छी नौकरी पा सकने का मसला हल न हुआ। रोज़गार के तौर पर सिवाय नौकरी के दूसरी राह न थी। मिस्टर इर्शाद की हवेली से उन की हैसियत जाँचने वाले लोग अकसर यह भी कह उठते—"मियाँ, फिलहाल ज़माने में नौकरी आसान नहीं और फिर नौकरी में रखा ही क्या है? बड़ा महीने में गिना-चुना रुपल्ली। कोई रोज़गार ही करो।"

इर्शाद को यूनिवर्सिटी की शिक्षा और टेनिस के खिलाड़ी के नाते बड़े आदमियों से दोस्ती और सम्मान का ख्याल कर दूसरे लोग सलाह देते—"वल्लाह, क्या बनिये-बक्काल का काम करोगे? तुम्हारे खानदान ने हमेशा हुकूमत की है। बड़े-बड़े अफ़सरान, हुक्मरान राजा-नव्वाबों तक तुम्हारी पहुँच है। डिप्टी कलक्टरी तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है?" इस सब आशावाद के बावजूद इर्शाद जानते थे, किसी भी अच्छी सरकारी नौकरी की राह में कम्पीटाशन की कसौटियाँ हैं, जहाँ उम्मीदवारों को पहले और दूसरे डिवीजन की चलनियों में छाना जाता है। सिफ़ारिश से बहुत कुछ हो सकता है परन्तु सिफ़ारिश की ड्योढ़ी तक पहुँचना भी तो आसान नहीं। यूँ सेक्रेटेरियट की पचास-साठ की नौकरी के लिये किस की सिफ़ारिश अथवा खुशामद करें, तो उसमें अपनी हेठी।

सोच-सोच कर मिस्टर इर्शाद ने निश्चय किया—उनके लिये नौकरी की गुञ्जाइश सरकारी महकमों में नहीं, राजा-रजवाड़ों में ही हो सकती है। जहाँ केवल परीक्षा का ही नहीं, गुण का भी मूल्य हो। बार-बार उन्हें गिल्लूर के नवाब साहब और बिन्दौर के राजा साहब का ख्याल आ जाता। अन्तरंग मित्रों ने समझाया भी—जब वाक़फ़ियत है तो उस से फायदा न उठाने का मतलब क्या? ऐसे लोगों के यहाँ बीसियों मैनेजर और सेक्रेटरी पड़े रहते हैं। बीसियों दूसरी रियासतों और रजवाड़ों में ऐसे लोगों की रिश्तेदारियाँ और लिहाज़ रहते हैं। उन्हें ख्याल हो जाय तो तीन-चार सौ रुपया माहवार कौन बड़ी बात है? लेकिन, बड़े आदमी भी इन्सान का ख्याल उसकी हैसियत से ही करते हैं।

मिस्टर इर्शाद को मालूम था राजा साहब बिन्दौर मसूरी में हैं। अख़बारों के खेल-समाचार के कालमों में उन का नाम छपता रहता था। साहस कर इर्शाद ने एक पत्र अंग्रेज़ी में टाइप कर राजा साहब को भेजा—शायद किसी काम में उन्हें मसूरी जाना पड़े। यदि ऐसा हुआ तो वह राजा साहब के दर्शन अवश्य करेंगे। बहुत जल्द ही राजा साहब का उत्तर आया—इर्शाद! साहब अवश्य मसूरी तशरीफ़ लायें और राजा साहब के मेहमान बनें।

× × ×

मित्रों ने इर्शाद को समझाया—जीवन में ऐसे अवसर कम आते हैं, ऐसे अवसर पर चूकना मूर्खता है। मिस्टर इर्शाद ने कुछ क़र्ज़ लिया। दो नई पतलूनें और कमीज़ें बनवायीं। टेनिस के धारीदार कोट और पतलून पर सफ़ाई और इस्त्री करवायी और रैकेट पर वार्निश। एक मित्र से सूटकेस उधार लिया। लखनऊ से मसूरी तक थर्डक्लास का किराया था लगभग आठ रुपये। सफ़र थर्डक्लास में भी हो सकता था परन्तु मसूरी में हैसियत बरक़रार रखना ज़रूरी था। अधिक से अधिक जितना भी हो सका; पूरे साठ रुपये जेब में डाल, इर्शाद घर से चल पड़े।

मसूरी में मोटर के अड्डे 'सनीव्यू' पर मोटर से उतर, इर्शाद सूटकेस और बिस्तर कुली के सिर पर उठवा राह पूछते, राजा साहब बिन्दौर की कोठी पहुँच सकते थे। परन्तु राजा साहब बिन्दौर का नाम सुनते ही, कोठी पर पहुँचा देने के लिये आतुर रिक्शा-कुलियों ने इर्शाद को घेर लिया। औचित्य और सम्मान का ख्याल कर इर्शाद रिक्शा पर लद कर चले और कुली उन का असबाब लेकर पीछे-पीछे।

कोठी पर राजा साहब ने तपाक से इर्शाद का स्वागत किया। उन्हें बरामदे में कुर्सी पर बैठा, उपस्थित सज्जनों से परिचय कराया। राजा साहब बिन्दौर ने इर्शाद की प्रशंसा में कहा—"नव्वाब साहब टेनिस ऐसी खेलते हैं कि इनके सामने रैकेट हाथ में लेने की मजाल लखनऊ में तो कोई क्या करेगा।"

इर्शाद साहब को ढोकर लाने वाले रिक्शा-कुली एक ओर खड़े अपनी ओर दृष्टि पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इर्शाद के मन में निरन्तर जेब से पैसे निकाल कर देने का ध्यान था परन्तु उस परिस्थिति में इस बात को इतना महत्व देना उचित न जँचा। राजा साहब का ध्यान दूसरी ओर होने पर

इर्शाद उठे। जेब मे पाँच रुपये का नोट निकाल एक कारिन्दे को थमाते हुये उन्होने कहा - इन कुलियों को पैसे दे दिये जायें। वे देखते रहे कि नोट कुलियों के पास पहुँच गया। बोझ उठाने वाले कुली ने भी आगे बढ़कर सलाम किया। कुली माथा छूकर अब भी कह रहे थे—"राजा लोग के यहा से बख्शीश!"—कारिन्दे ने कुछ और सुनने से इन्कार करने के स्वर में कह दिया, "बस ठीक है, जाओ बाट लो!" उस नोट से कुछ बचकर जेब मे वापिस लौटने की आशा इर्शाद को था परन्तु वह उसे पी गये।

इर्शाद साहब के लिये अलग कमरा ठीक हो गया। वे राजा साहब के साथ मेज़ पर खाना खाते, चाय पीते, बढ़िया से बढ़िया सिगरेटों के डिब्बे हर समय सम्मुख खुले रहते। विशेष अभ्यास न होने पर भी वे देखा-देखी सिगरेट लगा लेते। राजा साहब के साथ उनकी रिक्शा भी चलती। टेनिस कोर्ट मे उन्होंने अपने हाथ दिखाये। राजा साहब अपने मित्रों से उनका परिचय कराते और नव्वाब साहब कहकर सम्बोधन करते।

इर्शाद राजा साहब के साथ ट्रैक्समैन, सैवाय और शार्लविल्ली की पार्टियों और नाचों में जाते। प्रतिदिन सैकड़ों रुपया पार्टी, डांस और ड्रिंक की सूरत में बहता नज़र आता। इस समृद्धि म इर्शाद के लिये तीन-चार सौ निकलआना कौन बड़ी बात थी? प्रश्न था केवल उस ओर ध्यान जाने भर का। समृद्धि के अनुपात से, जो जितना समृद्ध समझा जाता है उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है, उतने ही अधिक रुपये उस के लिये बहाये जाते हैं। इस परिस्थिति में रुपये की कमी और गरीबी की चर्चा करने का साहस इर्शाद साहब के लिए सम्भव न था। किसी समय एकान्त देख वे इस सम्बन्ध में राजा साहब से बात करने का विचार करते रहे परन्तु वह समय न आया। और जब कभी कुछ मिनिट के लिए एकान्त मिला भी तो असमृद्ध पहचाने जाकर सम्मान खो देने के भय ने गले को जैसे अवरुद्ध-सा कर दिया।

इर्शाद ने मन को समझाया, वह भीख नहीं मांगना चाहता। वह काम और मेहनत करने के लिए तैयार है परन्तु आखें निरन्तर देख रही थीं—आदर-सम्मान काम और मेहनत का नहीं; बल्कि काम और मेहनत करने की आवश्यकता न होने का ही है। रुपये का सम्मान अवश्य है परन्तु रुपया पैदा करने वाले श्रम का निरादर ही है। एक सप्ताह तक अवसर से किसी भी

प्रकार लाभ उठा सकने में अपने को असमर्थ पा, इर्शाद साहब ने राजासाहब से लखनऊ लौट जाने की इजाजत चाही।

राजा साहब ने आग्रह किया—"अभी दो चार रोज़ और ठहरिये।"

राजा साहब की इच्छा के अनुकूल सेक्रेटरी साहब ने सुझाया—"नव्वाब साहब ट्रेनों में भीड़ का क्या हाल है, शायद ख्याल नहीं रहा ! तीन दिन से कम नोटिस पर तो सीट रिजर्व हो ही नहीं सकती !"

सीट रिजर्व होने या न हो सकने के प्रश्न की उपेक्षा के भाव से इर्शाद साहब ने उत्तर दिया—"वाह, ऐसी कौन बात है ?"

उस उपेक्षा की चिन्ता न कर, अपनी उपयोगिता दिखाने के लिए, टेली फोन की ओर बढ़ते हुए सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को सम्बोधन किया— हुजूर, नव्वाब साहब के लिए किस तारीख के लिए सीट रिजर्व करा दी जाए ? आज पाँच है।"

इर्शाद साहब की ओर देख राजा साहब ने फर्माया—"ऐसी क्या जल्दी है, दो रोज तो और ठहरिये। छः और सात को रहिए। हाँ, आठ के लिए करा दो।"

सेक्रेटरी साहब ने मसूरी में रेल के दफ्तर को फोन किया। उत्तर मिला, सीटें पूरे सप्ताह के लिए रिजर्व हो चुकी हैं। सेक्रेटरी के इस उत्तर से इर्शाद साहब को सान्त्वना हुई थी। परन्तु सेक्रेटरी साहब यों पराजय स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। दुबारा फोन किया और ज़रा ऊँचे स्वर में बोले— "सुनिए, हम राजा साहब बिन्दौर के यहाँ से बोल रहे हैं। राजा साहब फर्माते हैं, एक सीट की जरुरत है नव्वाब इर्शाद हुसैन साहब के लिए, आठ तारीख को हावड़ा एक्सप्रेस में लखनऊ तक।"

अब की बार उत्तर भिन्न था। मुस्कराकर सेक्रेटरी साहब ने फर्माया— हुजूर को सलाम बोल रहे हैं और कहते हैं, टिकिट अलग रख लिया है। आदमी भेज कर मंगा लीजिए।"—टिकिट की कीमत भी उन्होंने बता दी इकतालिस रुपये आठ आने।

इर्शाद साहब का चेहरा पीला पड़ जाना चाहता था। हृदय की सम्पूर्ण शक्ति और साहस से उन्होंने चेहरे के भाव को सम्भाला। उनके लिए राजा

साहब की मार्फत सीट रिजर्व हो चुकी थी, टिकट खरीद लिया गया था। बयालिस रुपये तुरन्त जेब से न निकाल देने का अर्थ होता, अपने आप को उस सब सम्मान के लिए अनाधिकारी प्रमाणित करना जो ऊँचे दर्जे में सफर करने वाले राजा साहब के अतिथि के रूप में उनका किया जा रहा था।

इर्शाद साहब के मसूरी से चलने के दिन राजा साहब ने दोपहर को एक अच्छी खासी विदाई की दावत [फेयरवेल लंच] टेनिस के खिलाड़ियों को दे डाली। नए खिलाड़ियों से परिचय प्राप्त करने का राजा साहब के लिए यह अच्छा अवसर था। दोपहर की दावत के बाद तीन बजे नीचे जाने वाली मोटर में उन्हें विदा करने के लिए सेक्रेटरी साहब रिक्शा में 'सनीव्यू' तक आये। पहले से फोन कर उनके लिए टैक्सी में सीट रिजर्व की जा चुकी थी।

एक रुपया दे कर मोटर लारी में चुपचाप नीचे चले जाने के बजाय, कार की आराम देह पिछली गद्दी पर बैठ कर जाना इर्शाद को सूलों की सेज जान पड़ रहा था। जेब में शेष रह गये केवल चार रुपये इसके लिए पर्याप्त भी होंगे या नहीं? यदि सेक्रेटरी साहब 'सनीव्यू' तक साथ न आते तो गले पर यह आखिरी छुरी क्यों फिरती? परन्तु उनके साथ न आने का अर्थ होता, इर्शाद के सम्पूर्ण सत्कार का विद्रूप में परिणत हो जाना? राजा साहब की कोठी से चलते समय नौकरों ने एक पंक्ति में खड़ा होकर सलाम किया। इस सलाम का अर्थ वह समझा न हो सो बात नहीं; परन्तु हृदय पर पड़ती भालों की इस चोट को वह अपने असामर्थ्य से आँखें फिरा, होंठ काटकर सह गया।

इतनी बड़ी हैसियत के मुसाफिर से किराए का तकाजा करना मोटर कम्पनी के एजेण्ट के लिए उचित न था। उसने विनय से रसीद सेक्रेटरी साहब की मार्फत 'नव्वाब' साहब के हाथ में पहुँचा दी। रसीद की ओर नजर डाले बिना सेक्रेटरी ने उसे नव्वाब साहब के हाथ में दे दिया। 'नव्वाब साहब' ने भी प्रकट उपेक्षा से उसे पतलून की जेब में खोंस लिया।

कार के चल पड़ने पर उस रसीद की उपेक्षा सम्भव न थी। इर्शाद ने रसीद निकाली और देखा—तीन रुपये आठ आने। फिर ध्यान से देखा और भाग्य के सम्मुख सिर झुका एक दीर्घ निश्वास ले वह सीने पर बाँहें बांध, सीट से पीठ टिका बैठ गया। तेज चाल से फिसलती जाती कार की आरामदेह गद्दी पर बैठ उसकी कल्पना अनुभव कर रही थी—एक कठोर अग्नि परीक्षा

में पूरा उतर कर वह सुरक्षित चला आ रहा है। राजा साहब की कोठी में बिताये दस दिन का उसके जीवन से भिन्न एक अस्तित्व था। दस दिन के इस जीवन का कोई आगा-पीछा न होने पर भी उसमें एक सन्तोष था। जैसे-तैसे उसने उसे निभा दिया!

और जब देहरादून स्टेशन पर पहुँच ड्राइवर ने गाड़ी का पिछला दरवाज़ा खोल सलाम किया, इर्शाद सम्भ्रम-सहित उठ गाड़ी के बाहर आया। जेब में शेष रुपये-रुपये के चार नोट उसने ड्राइवर की ओर बढ़ा दिये। इर्शाद से पहले उतरने वाले अंग्रेज़ साहब पांच रुपये का नोट ड्राइवर को दे, धन्यवाद के सलाम की प्रतीक्षा न कर सीधे स्टेशन की ड्योढ़ी में चले गये थे। ड्राइवर ने झुक कर जो सलाम नव्वाब साहब को किया वह निश्चय ही आठ आने से अधिक मूल्य का था और जब ड्राइवर ने चारों नोट जेब में रख लिये तब उपाय ही क्या था?

कार में सफ़र करने वाले मुसाफ़िर से आदेश की प्रतीक्षा किये बिना कुली इर्शाद का हलका असबाब उठा स्टेशन के भीतर चल दिया। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर लगी न थी। सामान पहले दर्जे के मुसाफिरों के लिये विश्राम करने के कमरे में रख दिया गया।

अंग्रेज मुसाफिर गुसलखाने में चला गया था। इर्शाद पंखे के नीचे आराम कुर्सी पर सिर को दोनों हाथों से थाम बैठ गया। वह परेशान था, गाड़ी में असबाब रखने के बाद कुली को कम से कम चार आने पैसे देने ही होंगे और इर्शाद की जेब में भाग्य से एक भी पैसा शेष न था। इन चार आने पैसों के अभाव में नव्वाबी के सम्पूर्ण अभिनय की इमारत ढह कर गिर जाना चाहती थी। इर्शाद ने किसी चमत्कार की आशा में सभी जेबों में हाथ डाले परन्तु जो था नहीं वह कहां से निकल आता?

सहसा मस्तिष्क में एक विचार सूझा। अधमुंदी आंखों से अपने विचार की उधेड़बुन में वह कितनी ही देर बैठ रहा। रिफ्रेशमेंटरूम का बैरा चाय के लिये पूछने आया। उसे इर्शाद ने सिर हिला इन्कार कर दिया। गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही वह गुसलखाने में चला गया।

आधा घण्टा''''पैंतालिस-पचास मिनिट''''पूरा एक घण्टा गुज़र गया। कुली बार-बार झांक कर देख रहा था। गाड़ी ने सीटी दे दी, गार्ड साहब ने

सीटी बजाई, हरी झण्डी दिखाई, गाड़ी चल दी। लेकिन साहब गुसलखाने मे निकले नहीं। जब साहब गुसलखाने मे निकले, गाड़ी छूट चुकी थी।

इर्शाद ने परेशानी के भाव में पूछा—क्या गाड़ी छूट गई? कुली और वेटिंगरूम के बैरे ने सिर झुका कर उत्तर दिया—"हुजूर!"

इर्शाद ने टिकट चेकर बाबू के समीप जाकर शिकायत की—उसके गुसल करते समय ही गाड़ी छूट गई।

उत्तर मिला—"अब आप देहली एक्सप्रेस मे मुरादाबाद जाकर लाहौर-हावड़ा मेल पकड़ सकते हैं। लेकिन सीट उस में रिजर्व होना मुश्किल है।" मुरादाबाद में गाड़ी की प्रतीक्षा की असुविधा का अनुभव कर इर्शाद ने कहा, "अब आज नहीं, वह कल सीधा लखनऊ की गाड़ी मे ही जायगा और उसका फर्स्टक्लास का टिकट वापिस कर लिया जाय।"

इर्शाद के उसी टिकट से आज के बजाय कल सफर करने में टिकट बाबू को कोई एतराज न था। टिकट वापिस भी हो सकता था परन्तु वह मसूरी में खरीदा जाने के कारण देहरादून में नहीं उसके लिये लखनऊ मे ट्रैफिक-सुपरिंटेण्डेण्ट के दफ्तर मे टिकट भेज कर पत्र लिखा जाना जरूरी था।

इतने गहरे विचार से चली गई चाल उल्टी पड़ जाने से इर्शाद के पाव तले से धरती खिसक गई। वह फिर आराम कुर्सी पर आ पड़ा। वेटिंग रूम के बाहर खड़ा कुली प्रतीक्षा कर रहा था और इर्शाद ......वह कुली के चार आने मांग सकने के अधिकार के सम्मुख असमर्थ था। सब कुछ सह कर भी नव्वाबी की शानदार मेहराब से कुली की ईंट खिसकी जा रही थी—केवल चार आने के रूप में!



चूक गयी

यदि मैं आप से पूछूँ—पागल किसे कहते हैं ? आप क्या उत्तर देंगे ?

आप कहेंगे—जिस शख्श का दिमाग ठीक न हो, जो बहकी-बहकी बातें या बेहूदा हरकतें करे, वह पागल है। जवाब ठीक है लेकिन सवाल हो सकता है, दिमाग की सही हालत क्या है ? इस बारे में पागल समझे जाने वाले इन्सान की राय का भी कोई मूल्य है या नहीं ?.........किन बातों को बहकी हुई और किन हरकतों को बेहूदा समझ लिया जाय ?

मेरा खयाल है, सभी किस्म की बातें और हरकतें हम सभी लोग किसी न किसी वक्त करते हैं। केवल समय और स्थान के लिहाज से कुछ बातें बहकी हुई और हरकतें बेहूदा हो जाती हैं। पागल ये ही सब काम और बातें करते हैं, जो हम और आप करते हैं। उन्हें केवल समय और स्थान का ध्यान नहीं रहता। उनके दिमाग़ में समझ का कांटा गलत लाइन पर बदल जाता है और उनकी ज़िन्दगी की रेलगाड़ी पूरी रफ्तार से दौड़कर समाज के विश्वास और निश्चय की मज़बूत पुश्तियों से टकराकर चूर-चूर हो जाती है। हमारा समाज अपने विश्वास की दृढ़ता के अभिमान में तिरस्कार भरी करुणा की व्यापक मुस्कान से कह देता है—पागल ! बिलकुल सही और सीधी लाइन चलती आदिरा की सुन्दर जीवनी के साथ भी यही हुआ।

मेजर पालित के साथ मैं पागलखाना देखने गया और आदिरा को देखा। मेजर ने बिलकुल तटस्थ भाव से कहा—"इसका पागलपन यही है कि यो तो

जो कुछ यह करना चाहती है, वह बिलकुल सही और मुनासिब है। लेकिन यह सब इसे इस समय कहना और करना नहीं चाहिए क्योंकि इसका वक़्त निकल गया है। इसकी ज़िन्दगी की गाड़ी 'फुल-स्टीम-अहैड' (पूरी रफ्तार से) जाना चाहती है लेकिन उसका वक़्त निकल गया है इसलिये इसे किसी स्टेशन पर सिगनल नहीं मिल सकता। हमारे समाज के विश्वास और रीति को यह अपनी रफ्तार की शक्ति से धक्का न दे, यह किसी को कुचल न डाले, इसलिये इसे यहाँ लाकर बन्द कर दिया गया है। यहां यह जीवन के शेष दिनों तक, अपनी ज़िन्दगी की भाप को फुफकारों में समाप्त करती रहेगी और स्वयं भी समाप्त हो जायगी।"

मेरा विश्वास है मनुष्य प्रकृति की अपेक्षा अधिक दूरदर्शी है। वह अपनी कला की सृष्टि, चाहे वह प्रकृति की नक़ल भर ही क्यों न हो, सङ्गमरमर, पीतल, अष्ठधात या मजबूत कैनवस पर करता है। यह चीज़ें स्वयम् इन्सानी ज़िन्दगी की अपेक्षा कहीं चिरस्थायी होती हैं। प्रकृति अपने सौन्दर्य और कला का प्रदर्शन करती है, कल्पना-सी नाज़ुक फूलों की पंखुड़ियों में और रक्त-मांस जैसे क्षण-भंगुर पदार्थों में। उन्हें देखकर या उनके ख़याल से मनुष्य एक समय अवाक् रह जाता है, सकते में आ जाता है परन्तु उनका अस्तित्व क्या है? यह चमत्कार कितनी देर टिक पाते हैं? एक इन्सान की छोटी-सी ज़िन्दगी में ऐसे कितने ही कमाल आते हैं और चले जाते हैं।

आदिरा को मैंने देखा। उसके सिर पर उजली चांदी लहरें ले रही थी। ध्यान से देखने पर महीन झुर्रियों से छाये उस के चेहरे पर एक असाधारण सौन्दर्य का ढाँचा विद्यमान था। उसकी निगाहें खोई-सी थीं लेकिन, उन निगाहों का घर! वे आँखें, वे क्या न रही होंगी?

एक बीते हुए सौन्दर्य की रेखाएं मौजूद थीं परन्तु सौन्दर्य, अदूरदर्शी प्रकृति का वह चमत्कार उड़ चुका था। रह गया था केवल संकेतमात्र जो कल्पना को सीमा रहित कर, अपनी उड़ान भरने के लिये उत्तेजित कर चुप रह जाता था। शायद ऐसे ही सौन्दर्य की कल्पना कर कवि बिहारी ने कहा होगा—'भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर......!' यानि, उस दिव्य सौन्दर्य की छवि उतारने के प्रयत्न में संसार के कितने चतुर चित्रकार और कलाकार हथियार नहीं डाल गये।

परन्तु उस सौन्दर्य के प्रति श्रद्धा मे माथा नवा देने से पहले ही आदिरा का बुढ़ापे का शृङ्गार; माथे की बिन्दी, कानों के कर्णफूल, गले का हार और सब से अधिक उसकी भूली-भटकी निगाहों ने मन में एक आशङ्का जगा दी, एक वितृष्णा पैदा कर दी। ठीक वैसे ही जैसे किसी सुन्दर चमकीले साँप की चपलता देख मन सिहर उठता है।

मेरे इस सौन्दर्य का कोई प्रयोजन है क्यों नहीं ?·········अवश्य है।········· आओ !·····आओ न ! दोनों बाहें फैलाये, सिनेमा की सफल नायिका की अदा से आदिरा ने कहा और आकाश की ओर दृष्टि उठाये वह एक ओर चल दी। उस की वह आयु और उसका वह द्रवित स्वर ! देख और सुन कर शरीर के रोंगटे खड़े हो गये ! कहा जा सकता था, वह किसी नाटक के अभिनय का रिहर्सल कर रही है या यही उसका पागलपन था।

"यहाँ भीतर देखो !"—मेजर पालित ने आदिर की कोठरी के भीतर मेरा ध्यान दिलाया। दिवार पर एक अधूरा तैल-चित्र लटका था। चित्रों का मुझे शौक है। काफी चित्र मैंने देखे हैं। यूरोप में ऐसे चित्र भी देखे हैं जिन्हें संसार की कला का प्रतिनिधि कहा जाता है। रोज़ेटी और राफेल के बनाये चित्र देखे हैं, बॉगन के देखे हैं। भारतीय चित्र कला तो अपने घर और अभिमान की चीज़ है ही परन्तु उस अधूरे चित्र को बहुत देर तक देखता रह गया।

"यह इसी का चित्र है।"—मेजर पालित ने कहा। चित्र की ओर से निगाह हटाये बिना आदिरा के चेहरे की लाइनों और अनुपात को याद करने लगा। दोनों में समानता थी। वैसे ही जैसे ताजमहल बनाने से पहले उस का नक़्शा तैयार कर लिया जाय और बाद में ताजमहल से उस नक़्शे का मिलान किया जाय। आदिरा सिर्फ एक धुंधला नक़्शा भर थी और वह चित्र, ताज-महल की अपनी सम्पूर्ण गरिमा लिये हुए।

उस चित्र की ओर से मैं निगाह हटा न सका और मेजर पालित कहते गये—"यह आदिरा बम्बई के एक बहुत प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार की लड़की है। कम उम्र में ही विधवा हो गई थी। माता-पिता नये और उदार विचारों के लोग थे। उन्होंने इसे अपना जीवन नये सिरे से ढालने की पूरी स्वतंत्रता दी। इस में बचपन से प्रतिभा थी और प्रतिभा के साथ दृढ़ता भी।

इसने पढ़ने-लिखने में मन लगाया परन्तु वह लिखना-पढ़ना केवल मानसिक संतोष क प्रयोजन से था।

"कहना पड़ेगा, बद-किस्मती से इसका परिचय एक बहुत नामी और सफल कलाकार से हो गया। कलाकार का नाम नहीं बता सकता। हम डाक्टर लोग गर्व से सिर ऊँचा किये रहने वाले कितने ही खान्दानों के कच्चे-चिट्ठे जानते हैं। कितनी बर्बाद और मासूम जिन्दगियों की आहों के राज़ हमारे दिलों मे छिपे रहते हैं। उन्हें-ज़बान पर लाना पेशे के इख्लाक के खिलाफ़ है। उस चित्रकार की कई चीजें तुमने देखी होंगी, तारीफ़ की होगी, कुछ समय से ज़िक्र नहीं सुना होगा और अब शायद सुनोगे भी नहीं।

"उस नामी चित्रकार से इस स्त्री का परिचय हो गया। ज्यों-ज्यों परिचय बढ़ता गया, इस की श्रद्धा कलाकार पर बढ़ती गई। चित्रकार के मन में आदिरा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उस अनुराग को केवल भावनामय आत्मिक प्रेम समझ, संतोष पाने की आशा में आदिरा बढ़ती गई। चित्रकार का भावना क्रियात्मक रूप में आने लगी। आदिरा को यह मन्जूर न था परन्तु हृदय में चित्रकार के प्रति प्रेम और श्रद्धा भी थी।

"दोनों में एक संघर्ष आरम्भ हुआ। कलाकार की ओर से पाने का और आदिरा की ओर से बचने का। चित्रकार आदिरा को सशरीर चाहता था और आदिरा केवल भावना के फूल उस के चरणों में अर्पण करती। दोनों में बहस होती। दोनों की अपनी-दलीलें थीं। कई मास बीत गये।

"अतृप्ति की आंच से तप कर कलाकार निरुत्साह रहने लगा, शिथिल होने लगा। उसकी सम्पूर्ण प्रतिभा आदिरा को जीत लेने के प्रयास में खर्च होने लगी। आदिरा दृढ़ रही, क्यों कि यह उसका अपना विश्वास और निष्ठा थी।

"चित्रकार का काम बन्द हो गया। अब वह केवल आदिरा का चित्र बनाना चाहता था। आदिरा से उसका मिलना कम होने लगा। शब्दों से निराश हो उस ने आदिरा को रेखाओं में बाधने का यत्न आरम्भ किया। अपने आपको भूल जाने के लिये वह दिन-रात आदिरा के चित्र में लगा रहता।

"आदिरा के चेहरे का यह चित्र बना कलाकार ने चित्र दिखाने के लिये उसे अपने मकान पर बुलाया। चित्र का तैयार भाग आदिरा को दिखा

चित्रकार ने कांपते हुए स्वर में कहा—"मैं चाहता हूँ तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर का जैसे का तैसा एक चित्र तैयार करना। स्वयम् वञ्चित रहकर भी प्रकृति के इस अनूठे वरदान की एक यथा-तथ्य स्मृति छोड़ जाना चाहता हूँ।"

"लज्जा और अपमान से आदिरा का चेहरा लाल हो गया। स्वेद कणों से सिक्त शरीर पर रोम खड़े हो गये। नेत्र झुकाकर उसने उत्तर दिया—"यह कला की साधना नहीं, वासना का प्रपञ्च है।"

"परास्त कलाकार खीझ उठा। आदिरा की आंखों में आंखें गड़ा उसने प्रश्न से उत्तर दिया—तो फिर तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है? वह कलाकार मार खाये हुए की भांति आत्म-ग्लानि और लज्जा से अपना घर छोड़ कहीं चला गया और फिर लौटा नहीं।

"अपने घर लौट आदिरा कलाकार और उसकी अन्तिम प्रतारणा की बात—तो फिर तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है? सोचती रही।

"उसे आशा थी, सुबुद्धि होने पर कलाकार लौट आयगा पर वह लौटा नहीं। आदिरा स्वयम् विक्षिप्त रहने लगी और एक दिन चित्रकार के मकान पर जा, उसके हाथों आरम्भ की गई अपनी वह तस्वीर उठा लाई। इस तस्वीर के सामने वह घण्टों बैठी रहती और स्वयम् ही बड़बड़ाने लगती—तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है?

"वह सोचती रही—यद्यपि कलाकार की कला उसकी वासना का ही रूप था परन्तु वह अपराध क्योंकर था? और कलाकार की वासना स्वयम् उस के अपने जीवन की पुकार और अस्तित्व की स्वीकृति ही तो थी……… मेरे लिये गर्व की वस्तु ही तो थी?

"समय बीतता गया। समय की बहती हुई धारा अदृश्य रूप से आदिरा के लावण्य के कण बहाये लिये जा रही थी। निरंतर चिंता से आदिरा सचेत होने लगी, उपयोग में आ सकने की अपनी शक्ति के प्रति और उसके लिये बीते जाते अवसर के प्रति। वह अधीर होने लगी, क्या कलाकार अब लौटेगा नहीं?

"जैसे ढलवान मे आकर नदी का वेग बढ़ जाता है, वह किनारों की काट अधिक तेजी से करती है, वैसे ही ढलती आयु शरीर को तीव्रता से क्षीण करने लगती है। आदिरा अधीरता से अनुभव करने लगी, लावण्य का पुंज उस का शरीर क्षीण हुआ जा रहा है"""निष्प्रयोजन"""। किसी भी उपयोग मे आये बिना।

"कलाकार के लिये आदिरा की प्रतीक्षा खोज में बदलने लगी। आदिरा उसे ढूंढ़ने के लिये बदहवासी में घर से निकल पड़ती। उसकी यह बद-हवासी सम्पन्न और सम्भ्रान्त परिवार के लिये अवाछ बनने लगी। उस पर बन्धन लगाने की आवश्यकता हुई। बन्धन ने उसकी बदहवासी को भड़का दिया।

"अब एक बरस से वह यहाँ है। वह चाहती क्या थी? चाहती क्या है? उस के निष्प्रयाजन बीतते सौन्दर्य का अस्तित्व उपयोग में निकल आये! इस में गलती क्या है? केवल समय और परिस्थिति निकल गई है"""वह चूक गई।"

× × ×

मेजर पालित चुप हो गये। चित्र की ओर से दृष्टि हटा मैंने शोक प्रकट किया—"काश यह चित्र पूरा बन सकता! इसका पूरा न हो सकना मानव कला की संस्कृति के लिये कभी पूरी न हो सकने वाली हानि रह जायगी।"

मेजर पालित अब भी तटस्थ थे। उन्होंने पूछा—"और क्या यह नष्ट हो रहा जीवन फिर लौट आयगा!"

सोचने लगा—एक मानव का जीवन"""कला की एक उत्कृष्ट कृति की अपूर्णता? कौन अपूर्णता अधिक चिन्तनीय है? जीवन की अपूर्णता में कला है, कला से जीवन की पूर्णता है।—खैर जो भी हो, आदिरा चूक गई।



आदमी का बच्चा

दोपहर तक डौली कन्वेण्ट (अंग्रेजी स्कूल) में रहती है। इसके बाद उस का समय प्रायः आया 'बिन्दी' के साथ कटता है। मामा दोपहर में लञ्च के लिये साहब की प्रतीक्षा करती है। साहब जल्दी में रहते हैं। ठीक एक बजकर सात मिनिट पर आये, गुसलखाने में हाथ-मुंह धोया, इतने में मेज़ पर खाना आ जाता है। आधे घण्टे में खाना समाप्त कर, सिगार सुलगा, साहब कार में मिल लौट जाते हैं। लञ्च के समय डौली खाने के कमरे में नहीं आती, अलग खाती है।

संध्या साढ़े पांच बजे साहब मिल से लौटते हैं तो बेफिक्र रहते हैं। उस समय वे डौली को अवश्य याद करते हैं। पांच-सात मिनट उस से बात करते हैं और फिर मामा से बातचीत करते हुए देर तक चाय पर बैठे रहते हैं। मामा दोपहर या तीसरे पहर कहीं बाहर जाती हैं तो ठीक पांच बजे लौटकर साहब के लिये कार मिल भेज देती हैं। डौली को बुला साहब के मुआयने के लिये तैयार कर लेती हैं। हाथ-मुंह धुलवा कर डौली की सुनहलापन लिये काली, कत्थई अलकों में वे अपने सामने कंघी कराती हैं। स्कूल की वर्दी की काली-सफ़ेद फ्राक उतार कर दोपहर में जो मामूली फ्राक पहना दी जाती है उसे बदल नई बढ़िया फ्राक उसे पहनाई जाती है। बालों में रिबन बांधा जाता है। सैण्डल के पालिश तक पर मामा की नज़र जाती है।

बग्गा साहब मिल में चीफ़ इञ्जीनियर हैं। विलायत पास हैं। बारह सौ रुपया महीना पाते हैं। जीवन से संतुष्ट हैं परन्तु अपने उत्तरदायित्व से भी

बेपरवाह नहीं। बस एक ही लड़की है डौली। डौली पांचवें वर्ष में है। उसके बाद कोई सन्तान नहीं हुई। एक ही सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सकने से साहब और मामा को पर्याप्त संतोष है। बग्गा साहब की नज़रों में सन्तान के प्रति उत्तरदायित्व का आदर्श ऊंचा है। डौली को बेटी या बेटा सब कुछ समझ कर संतोष किये हैं। यूनिवर्सिटी की शिक्षा तो वह पायेगी ही। इसके बाद शिक्षा-क्रम पूरा करने के लिये उसका विलायत जाना भी आवश्यक और निश्चित है। सन्तान के प्रति शिक्षा के उत्तरदायित्व का यह आदर्श कितनी सन्तानों के प्रति पूरा किया जा सकता है ? साहब कहते हैं—यों कीड़े-मकोड़े की तरह पैदा करके क्या फ़ायदा ? मामा—मिसेज बग्गा भी हामी भरती हैं—और क्या ?

"डौली !......डौली !......डौली !......!" मामा तीन दफ़े पुकार चुकी थीं। चौथी दफ़े उन्होंने आया को पुकारा। कोई उत्तर न पा वे खिसियाकर स्वयं बरामदे में निकल आईं। अभी उन्हें स्वयं भी कपड़े बदलने थे। देखा—बंगले के पिछवाड़े से; जहां धोबी और माली के क्वार्टर हैं, आया डौली को पकड़े लिये आ रही है। मामा ने देखा और धक से रह गईं। वे समझ गईं—डौली अवश्य माली के घर गई होगी। दो-तीन दिन पहले मालिन के बच्चा हुआ था। उसे गोद में लेने के लिये डौली कितनी ही बार ज़िद कर चुकी थी। डौली के माली की कोठरी में जाने से मामा भयभीत थीं। धोबी के लड़के को पिछले ही सप्ताह खसरा निकला था।

लड़की उधर जाती तो उन बेहूदे बच्चों के साथ शहतूत के पेड़ के नीचे धूल में से उठा-उठाकर शहतूत खाती। उन्हें भय था, उन बच्चों के साथ डौली की आदतें बिगड़ जाने का। आया इन सब अपराधों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर अनुभव कर भयभीत थी। मेम साहब के सम्मुख उनकी बेटी की उच्छृङ्खलता से अपनी बेबसी दिखाने के लिये वह डौली से एक क़दम आगे, उसकी बाँह थामे यों लिये आ रही थी जैसे स्वच्छन्दता से पत्ती चरने के लिये आतुर बकरी को जबरन कान पकड़ घर की ओर लाया जाता है।

मामा के कुछ कह सकने से पहले ही आया ने ऊँचे स्वर में सफ़ाई देना शुरू किया—"हम ज़रा सैंडिल पर पालिश करे के लई भीतर गयेन। हम से बोलीं कि हम गुसलखाने जायेंगे। इतने में हम बाहर निकल के देखें तो

माली के घर पहुंची हैं। हम को तो कुछ गिनती ही नहीं। हम समझायें तो उल्टे हम को मारती हैं……।" इस पेशबन्दी के बावजूद आया को डाट पड़ी।

"दिस इज वेरी गिली।"—मामा ने डौली को अँग्रेज़ी में फटकारा। अँग्रेज़ी के सभी शब्दों का अर्थ न समझ कर भी डौली अपना अपराध और उसके प्रति मामा की उद्विग्नता समझ गई।

तुरन्त साबुन से हाथ-मुंह धुलाकर डौली के कपड़े बदले गये। चार बज-कर बीस मिनट हो चुके थे इसलिये आया जल्दी जल्दी डौली को मोज़े और सैण्डल पहना रही थी और मामा स्वयं उसके सिर में कंघी कर उसकी लटों के पेचों को फीते से बाँध रही थी। स्नेह से बेटी की पलकों को सहलाते हुये उन्हें अचानक गर्दन पर कुछ दिखाई दिया—जूं! वज्रपात हो गया। निश्चय ही जूं माली और धोबी के बच्चों की सङ्गत का परिणाम था। आया पर एक और डाट पड़ी और नोटिस दे दी गई कि यदि फिर डौली आवारा गन्दे बच्चों के साथ खेलती पाई गई तो वह बर्ख़ास्त कर दी जायगी।

बेटी की यह दुर्दशा देख माँ का हृदय पिघल उठा। अँग्रेजी छोड़ वे द्रवित स्वर में अपनी ही बोली में बेटी को दुलार से समझाने लगीं—"डौली तो हमारी प्यारी बेटी है, बड़ी ही सुन्दर, बड़ी ही लाड़ली बेटी। हम इस को सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। डौली, तू तो अँग्रेजों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न बस में बैठकर? ऐसे गन्दे बच्चों के साथ नहीं खेलते न?"

मचल कर फ़र्श पर पाव पटक डौली ने कहा--"मामा, हमको माली का बच्चा ले दो। हम उसे प्यार करेंगे।'

"छी……छी……!"—मामा ने समझाया, "वह तो कितना गन्दा बच्चा है! ऐसे गन्दे बच्चों के साथ खेलने से छी-छी वाले हो जाते हैं। इनके साथ खेलने से जुएँ पड़ जाती हैं। वे कितने गन्दे हैं, काले-काले बच्चे! हमारी डौली कहीं काली है? आया, डौली को खेलने के लिये मैनेजर साहब के यहाँ ले जाया करो। वहां यह रमन और ज्योति के साथ खेल आया करेगी। इसे शाम को कम्पनी बाग ले जाना।"

डौली ने माँ के गले में बाहें डाल विश्वास दिलाया कि अब वह कभी गन्दे और छोटे लोगों के काले बच्चों साथ नहीं खेलेगी। उस दिन चाय

पीते-पीते बग्गा साहब और मिसेज बग्गा में चर्चा होती रही कि बच्चे न जाने क्यों छोटे बच्चों से खेलना पसन्द करते हैं। ""एक बच्चे को ही ठीक से पाल सकना मुश्किल है। जाने कैसे लोग इतने बच्चों को पालते हैं।"""" देखो तो माली को! कम्बख्त तीन बच्चे पहले हैं, एक और हो गया।

× × ×

बग्गा साहब के यहां एक कुतिया विचित्र नस्ल की थी। कागज़ी बादाम का-सा रङ्ग, गर्दन और पूंछ पर रेशम के से मुलायम और लम्बे बाल, सीना चौड़ा। बाहों की कोहनियां बाहर को निकली हुईं। पेट बिल्कुल पीठ से सटा हुआ। मुंह जैसे किसी चोट से पीछे को बैठ गया हो। आंखें गोल-गोल जैसे ऊपर से रख दी गई हों। नये आने वालों की दृष्टि उस की ओर आकर्षित हुए बिना न रहती। यही कुतिया की उपयोगिता और विशेषता थी। ढाई सौ रुपया इसी शौक का मूल्य था।

कुतिया ने पिल्ले दिये। डौली के लिये यह महान उत्सव था। वह कुतिया के पिल्लों के पास से हटना ही न चाहती थी। उन चूहे जैसी मुंदी हुई आँखों वाले पिल्लों को मांगने वालों की कमी न थी परन्तु किसे दें, और किसे इनकार करें? यदि इस नस्ल को यों बाटने लगें तो फिर उस की क़द्र ही क्या रह जाय? कुतिया का मोल ढाई सौ रुपया उस के दूध के लिये तो होता नहीं।

साहब का कायदा था, कुतिया पिल्ले देती तो उन्हें मेहतर से कह गरम पानी में गोता दे मरवा देते। इस दफे भी वे यही करना थे परन्तु डौली के कारण परेशान थे। आख़िर उस के स्कूल गये रहने पर बैरे ने मेहतर से काम करवा डाला।

स्कूल से लौट डौली ने पिल्लों की खोज शुरू की। आया ने कहा—"पिल्ले मैनेजर साहब के यहाँ रमन को दिखाने के लिये भेजे हैं, शाम को आ जायेंगे।" मामा ने कहा—"बेबी, पिल्ले सो रहे हैं। जब उठेंगे तो तुम उन से खेल लेना।" डौली पिल्लों को खोजती ही फिरी। आख़िर मेहतर से उसे मालूम हो गया कि वे गरम पानी में डुबोकर मार डाले गये।

डौली रो-रोकर बेहाल हो रही थी। आया उसे पुचकारने के लिये गाड़ी में कम्पनी बाग ले गई। डौली बार-बार पूछ रही थी—"आया, पिल्लों को गरम पानी में डुबोकर क्यों मार दिया ?"

आया ने समझाया—"डैनी (कुतिया) इतने बच्चों को दूध कैसे पिलाती ? वे भूख से चेऊँ चेऊँ कर रहे थे इसीलिये उन्हें मरवा दिया।" दो दिन तक डैनी के पिल्लों का मातम डैनी और डौली ने मनाया फिर और लोगों की तरह वे भी उन्हें भूल गई।

माली के नये बच्चे के रोने की 'कें-कें' आवाज आधी रात में, दोपहर में सुबह-शाम किसी भी समय आने लगती। मिसेज़ बग्गा को यह बहुत बुरा लगता। झल्लाकर वे कह बैठती—"जाने इस बच्चे के गले का छेद कितना बड़ा है।"

बच्चे की कें-कें उन्हें और भी बुरी लगती जब डौली पूछने लगती—"मामा, माली का बच्चा क्यों रो रहा है ?"

बिन्दी समीप ही बैठी बोल उठी—"रोयगा नहीं तो क्या, माँ के दूध ही नहीं उतरता।" मामा और बिन्दो को ध्यान नहीं था कि डौली उन की बात सुन रही है। डौली बोल उठी, "मामा, तो माली के बच्चे को मेहतर से गरम पानी में डुबवा दो तो फिर नहीं रोयेगा।"

बिन्दी ने हँसकर धोती का आँचल होठों पर रख लिया। मामा चौंक उठीं। डौली अपनी भोली सरल आँखों में समर्थन की आशा लिये उन की ओर देख रही थी। "दिस इज़ वेरी सिल्ली डौली,.........कभी आदमी के बच्चे के लिये ऐसा कहा जाता है !"—मामा ने गम्भीरता से समझाया। परिस्थिति देख आया डौली को बाहर घुमाने ले गई।

तीसरे दिन संध्या समय डौली मैनेजर साहब के यहाँ रमन और ज्योति के साथ खेलकर लौट रही थी। बंगले के दरवाजे पर माली अपने नये बच्चे को कोरे कपड़े में लपेटे दोनों हाथों पर लिये, बाहर जाता दिखाई दिया। उस के पीछे मालिन रोती चली आ रही थी।

आया ने डौली का हाथ थाम परछांई से एक ओर कर लिया। डौली ने पूछा—"यह क्या है ? आया, माली क्या ले जा रहा है ?"

"माली का छोटा बच्चा मर गया"—धीमे से आया ने उत्तर दिया और डौली को बांह से थाम बंगले के भीतर ले चली।

डौली ने अपनी भोली, नीली आंखें आया के मुख पर गड़ाकर पूछा—"आया, माली के बच्चे को गरम पानी में डुबो दिया ?"

"छिः डौली, ऐसी बातें नहीं कहते।" —आया ने धमकाया, "आदमी के बच्चे को ऐसे थोड़े ही मारते हैं!"

डौली का विस्मय शान्त न हुआ। दूर जाते माली की ओर देखने के लिये घूम कर उसने फिर पूछा—"तो आदमी का बच्चा कैसे मरता है ?"

लड़की का ध्यान उस ओर से हटाने के लिये उसे बंगले के भीतर खींचते हुए आया ने उत्तर दिया—"वह मर गया, भूख से मर गया। चलो मामा बुला रही हैं।"

डौली चुप न हुई। उसने फिर पूछा—"आया, हम भी भूख से मर जायेंगे ?"

"चुप रहो डौली"—आया झुंझला उठी, "ऐसी बात करोगी तो मामा से कह देंगे।"

परन्तु लड़की के चेहरे की सरलता से उस का माँ का हृदय पिघल उठा। उसकी घुंघराली लटों को हाथ से सहलाते हुए आया कहने लगी—"बैरी की आंख में राई-नोन! हाय मेरी मिस साहब, तुम ऐसे आदमी थोड़ी ही हो।"'भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे!"

कहते-कहते उसका गला रुंध गया। उसे अपना लल्लू याद आ गया""दो बरस पहिले""। तभी से तो वह साहब के यहां नौकरी कर रही थी।



पुलिस की दफा

पंजाब के स्कूलों में गरमी की छुट्टियां बरसात में होती हैं। गांव पहुँचने से पहले ही सब ओर गहरी हरियाली छायी रहती है। स्टेशन से कसबे तक पक्की और कच्ची सड़क के दोनों ओर खेतों में धान और मक्का घुटनों तक बढ़ आते हैं। सड़क किनारे गढ़ों में गंदला जल ताल-तलैया के रूप में भर जाता है।

चन्देगढ़ कांगड़े के पहाड़ों की तराई में एक बहुत छोटा-सा कसबा है। आस-पास के पहाड़ी गांवों के लोग मक्का और धान बेच गुड़, नमक, तेल, तम्बाकू और कपड़ा आदि खरीद ले जाते हैं। पांच छः दूकानें बजाजों की हैं, तीन चार सुनारों की। राघे पंसारी जनरल मर्चेण्ट और इकीस भी है। अजवायन, जीरा, लालटेन और किसानों के औजारों के लिये कच्चा लोहा तक बेचता है। कसबे में डाकखाना, थाना और प्रायमरी स्कूल भी हैं।

गांव भर में मैं ही अकेला व्यक्ति हूँ जिसने होशियारपुर और जालन्धर जाकर बी० ए० की डिगरी हासिल की है और अब फगवाड़े के हाई-स्कूल में मास्टर हूँ।

मानसिक रूप से कूपमण्डूक नहीं। जानता हूँ, यह संसार विशाल और विस्तृत है—रोचक और रहस्यमय है। स्कूल में लड़कों को भूगोल पढ़ाता हूँ। गरमियों के दो मास के अवकाश में स्वीडन जाकर मध्यरात्रि के सूर्य के दर्शन नहीं कर सकता, वीनस की गलियों में गंडोला की सैर भी नहीं कर सकता परन्तु इस विस्तृत और विचित्र देश में भी बहुत कुछ है:—कराची, बम्बई

मद्रास और पुरी मे समुद्र-तट हैं। उससे भी समीप पेशावर मे खैबर का ऐतिहासिक दर्रा है और स्वर्ग की उपमा पाने वाला काश्मीर भी। मैं अभी तक सैकड़ों राजवंशों को निगल जाने वाली अपने देश की राजधानी दिल्ली भी नहीं देख पाया।

छुट्टियों के अन्त में प्रति वर्ष जब अपने सीमित संकुचित कसबे से उकता जाता हूँ, आने वाली छुट्टियों में काश्मीर जाकर शिकारों पर निशात, शालीमार, और मार्तण्ड की सैर करने का निश्चय करता हूँ। पहलगाव, गुलमर्ग, कुकड़नाग, वैरीनाग सब मुझे याद हैं परन्तु आये साल छुट्टियों के एक सप्ताह पूर्व से ही बन्देगढ़ का आकर्षण प्रबल हो जाता है। विचार बदल जाते हैं। रक्खा हलवाई की धुएँ से काली, ततैयों और बरैयों से छाई दूकान गुलमर्ग की फूलों से भरी उपत्यकाओं और अधित्यकाओं से कहीं अधिक चित्रमय और मनमोहक बन जाती है। उस की दूकान के गुड़ के सेव और तेल के पकौड़े काश्मीर के बागों की चेरी, बग्गूगोशे और सेबों से अधिक आकर्षक बन जाते हैं। राधे पनसारी का चूर्ण डा० साह के कार्मिनेटिव मिक्सचर से अधिक विश्वास योग्य जान पड़ने लगता है। मुरली सुनार अपने चाँदी के चश्मे को सूर्य से ४५ अक्षांश पर सीधे, मेरी प्रतीक्षा में धमकाता सुनाई पड़ता है—हाँ, अब तो बम्बई और विलायत जाओगे; ····टाट 'चन्दा' करने को हमारी ही दूकान रह गयी थी? कल्पना में काहनसिंह अपने पके गलमुच्छे संवार कर कहता सुनाई पड़ता—अब नहीं कहानी सुनोगे, क्यों? उसकी रहस्यमय कहानियाँ याद आने लगती हैं। फिर दादी इस वर्ष जिन्दा हैं, अगले वर्ष का क्या ठिकाना? यह तो सृष्टि का क्रम है। बुजुर्गों की छत्रछाया सिर पर बनी रहे। पत्नी और एक वर्ष के बच्चे को याद की बात कहना ढीठपना है। सब लोग जानते हैं—वे भी हैं, पर व्यवहार ऐसा होना चाहिये मानो वे हैं ही नहीं।

गाँव में मेरी एक स्थिति है और आदर भी है। वहाँ कोई मेरी उपेक्षा नहीं करता। जाते ही सब लोग आन्तरिकता और चिंता से स्वास्थ्य का हाल और दूसरी बातें पूछते हैं, मानो वर्ष-भर मेरे बिछोह में वे कलपते रहे हैं। वर्ष-भर स्कूल में लड़कों की सन्दिग्ध और शिकायत-भरी, हेडमास्टर की हुकूमत-भरी और दूसरे सहयोगी मास्टरों की प्रतिद्वन्दिता-भरी दृष्टियों से मन

इतना विपन्न हो जाता है कि अपनी प्रतीक्षा में बिछी बन्देगढ़ की आंखों में जा कर विश्राम पाये बिना जीवन सम्भव नहीं जान पड़ता।

फिर वही सब बातें होने लगती हैं जिनसे छुट्टियां समाप्त होने के पहले उकता जाता हूँ। मकान के निचले बरामदे में मोढ़े पर बैठे-बैठे पुरानी पाठ्य पुस्तकों को पढ़ते रहना, कलमसिंह की खपरैल की छाजन पर से पीपल के पत्तों को हिलते देखते रहना और उस से बहुत दूर ज्वालामुखी की पहाड़ियों की अस्पष्ट-सी रेखा। गली में बरसात का कीचड़, फजल और महम्दे की चीनी बत्तखों के झुन्डों का एक दूसरे के पीछे गली के पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व दाने-तुनके और गिलाज़त की खोज में धावे करना, पत्थर मढ़ी गली में पहाड़ी गाँव से आने-जाने वाले खच्चरों का गुजरना।

सन्ध्या समय बिशन भड़भूंजे के छप्पर से धुएँ के बादलों के साथ ताजे भुनते चने और मक्का की खीलों की सोंधी-सोंधी गन्ध। बिशन की भट्ठी के सम्मुख गली और आस-पास के मुहल्ले के बच्चों का जमघट। उनकी महीन और तीखी आवाजें—कल्लू, नरायन, मत्ती खिज्रू, रहीमा जिन्हें मैं प्रतिवर्ष बालिस्त-बालिस्त भर बढ़ता देखता आया हूँ। फिर वही अदम्य आकर्षण बन्देगढ़ खींच लाता है, और फिर मैं उन से उकताने लगता हूँ।

× × ×

बन्देगढ़ आये डेढ़ सप्ताह गुजर गया। दोपहर को नींद के बाद जम्हाइया लेता नीचे बरामदे में मोढ़े पर आकर बैठा था कि पूर्व की ओर से गुरो छोटी सी पोटली काँख में दबाये दिखाई दी। जम्हाई से खुले जबड़ों को बस में कर पूछा—"भाभी कब आ गई ?"

कलमसिंह पिछले वर्ष भरती होकर लाम पर चला गया था। हर महीने उस का मनीआर्डर घर आ जाता था। मनीआर्डर गुरो के नाम आता था। गुरो की सास इस बात से बहुत बिगड़ती। उन का कहना था—लड़के का ब्याह कर उसे खो दिया। काली चोटी वाली ने लड़के को जाने क्या कर दिया कि उसी का हो रहा। पेट से पैदा करने वाली माँ कुछ भी ना रही।

पिछले तीन महीने से कलमसिंह की कुछ खबर नहीं आ रही थी। माँ को सन्देह था, बहू ने रुपये भेजने और खत लिखने को मना कर दिया है।

बेटे के प्रति अपना क्रोध वह बहू पर झाड़ती। दुपट्टा गले में डाल वह गली किनारे की खिड़की के पास बैठ जाती और हाथ बढ़ाकर मंटा कोसती रहती। तूने यह किया, तूने वह किया, तूने उसे सिखा कर लाम पर भेज दिया। जल गया तेरा पेट जो मेरे बेटे की कमाई से नहीं भरा। तेरी कोख में पत्थर भरे हैं। तेरे माँ-बाप ऐसे, तेरे मायके वाले वैसे·······।"

छुट्टियों में गांव आने पर सुना था, परेशान हो गुरो अपने मायके भुरोवाल चली गई है। सहसा उसे सम्मुख देख पूछा—

"क्या अकेले ही?········कुशल तो है?"

"हाँ बीर! (भैया)········वो लोग आने नहीं देते थे। भाई कहते थे, रखड़ी (राखी) के बाद जाना। रखड़ी से पहले हम छोड़ने नहीं जायेंगे। एक बहन है, उसे सावन में कैसे घर से निकाल दें। मेरा दिल नहीं माना। तीन महीने हो गये। लाम पर से तुम्हारे भाई को कोई खबर नहीं आयी। चिट्ठी तो इसी पते से आती है। सोचा क्या करूं चिट्ठी आती है तो सास दबा लेती है। मेरा दिल नहीं माना। चलूं देखूं, कोई खबर आयी हो। तुम कब आये? इधर कोई चिट्ठी तो नहीं आयी?"

विश्वास दिलाया—"नहीं, इधर दस दिन के भीतर तो नहीं आयी"—चिट्ठी आने पर कलमसिंह की माँ मुझ ही से तो पढ़ाकर सुनती, "जब चिट्ठी आयेगी, मैं तुम्हें ज़रूर खबर कर दूंगा।"

पहाड़ का आँचल होने से बन्देगढ़ में वर्षा अधिक होती है। पहाड़ों पर चढ़ने से पहले बादल पर्वत श्रेणियों से टकराकर छलक पड़ते हैं। प्रायः दोपहर भर बादल बरसता रहता। उस समय खपरैलों पर पड़ती वर्षा की गूंज में ऐसी नींद आती है जैसे कोई थपकी देकर सुला रहा हो। दोपहर की नींद के बाद नीचे आ देखता हूँ गुरो, अपने पुराने अभ्यास के अनुसार, दोपहर में मेरे निचले बरामदे के सामने अपनी खिड़की में चर्खा कातने बैठी है। मेरी दृष्टि प्रायः उस ओर चली जाती। उस का उदास पीला चेहरा, मैला कुरता और लाल छींट की सिलावर और सिर पर बेपरवाही से समेटा हुआ दुपट्टा। कभी गली में आहट पा, आकाश से पृथ्वी को छूती वर्षा के जल के तारों में से उस की दृष्टि मेरी ओर भी हो जाती है। पहचान पाने की एक हल्की सी मुस्कराहट, बादलों में से पल भर को झांक जाने वाली धूप की भाँति आकर

विलीन हो जाती। सावन की यह सूनी श्यामल दुपहरिया को किसी परस्पर रहस्य में मिलाने का प्रोत्साहन गुरो के उदास मुख से कभी न मिला। वह यों भाव-शून्य होकर चर्खा चलाती रहती मानों वह चर्खे का ही अंग है।

तीसरे पहर डाकिया इलाहीमियां छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों का गोल पीछे लिये बोली-ठोली कहते हमारी गली से गुजरे। एक पोस्ट-कार्ड मेरे लिये था। साढ़े तीन महीने बाद कलमसिंह की भी चिट्ठी आयी। डाकिये को देख बुढ़िया हांफती हुई ऊपर की छत से उतरी और चिट्ठी ले पढ़ाने मेरे यहां आ गई। गुरो ऊपर की खिड़की से देखती रही।

अपने नाम आया पोस्टकार्ड पढ़ सकूं इस से पहले अनेक आशीर्वाद दे बुढ़िया ने सरकारी मोहर का एक लिफाफा मेरे हाथ में दे दिया।

कठिनता से वह दुखदाई समाचार बुढ़िया को सुनाया। कलमसिंह लाम पर खेत हो गया था। बारह रुपया महीना गुरो के नाम कलमसिंह की पेंशन का हुकुम भी था।

बुढ़िया चीख मार, पछाड़ खा वहीं गिर पड़ी। ऊपर से मेरी दादी उतर आयीं। अगल-बगल के मकानों से रामलाल और शेरसिंह के घर की स्त्रियां भी झांकने लगीं। और भी बूढ़े-बुढ़ियां एकत्र हो सिर और कपड़े नोचती, छाती पीटती कलमसिंह की मां को सम्भालने लगीं। मैंने एक बार ऊपर गुरो की ओर—वह अपने चर्खे के सामने निश्चल बैठी रह गई।

कसबे भर के बूढ़े, बुढ़ियां कलमसिंह के मकान में कुछ समय के लिये बैठने आते और आखें पोंछते बुढ़िया को सान्त्वना दे चले जाते।

चार-पांच दिन तक उस खिड़की से समय-असमय बुढ़िया का विलाप सुनाई देता रहा। गुरो के रोने का स्वर नहीं सुनाई दिया। बुढ़िया के विलाप में सीठने (मृतक की प्रशंसा) और कोसने में सभी शामिल थे। उस हृदय-विदारक चीत्कार के कारण अपने निचले बरामदे में बैठना सम्भव न होता। निरन्तर वर्षा के कारण कहीं जाना भी कठिन था।

दो सप्ताह से अधिक गुज़र गया। पहले पहर आकाश खुलकर धूप फैल रही थी। बुढ़िया आयी। उसकी आंखें सूजी हुई और लाल थीं। कलमसिंह

की मृत्यु के समाचार का बादामी सरकारी कागज और तहसील के नाम पेंशन के हुक्म का कागज़ ले किसी तरह जीना चढ़ कर वह हमारे यहां ऊपर पहुँचा।

मेरी सौ बलाएँ अपने सिर ले, बुढ़िया ने फिर से कागज़ पढ़ाकर सुना। निरन्तर बहते आंसुओं को दुपट्टे से पोंछने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए उसने पूछा—"पेंशन के लिये मैं कहां जाऊं?" गुरो के प्रति संकेत कर बुढ़िया ने कहा, "उसका क्या है। उसके मायके में सब कुछ है। वह जवान है। उस के हाथ-पैर चलते हैं। उसे क्या फ़िक्र है। मेरा तो सहारा वही लड़का था। इस कोख से तीन लड़के पैदा किये, यही एक बचा था। उसे भी डायन खा गयी।"—शंकर खत्री शंकरगढ़ जा रहा था। उसी के साथ जाने की बात कह बुढ़िया चली गयी।

भादों जा रहा था। बादलों का रंग गहरा हो गया। गर्जन अधिक और वर्षा कम होने लगी। गुरो के चेहरे पर आने-जाने वाली मुस्कराहट का धूप भी विलीन हो चुकी थी। कलमसिंह के छप्पर के निचले तल्ले में शंकर खत्री गुड़ भर लेता था। ऊपर खपरैल की छत के नीचे एक कोठरी में उस खिड़की के अतिरिक्त बैठने की और जगह न थी। गुरो अब भी वहीं बैठी रहती।

तेरहवीं के बाद से उसने फिर चरखा भी रख लिया। चरखे से तार भी खींचती ही थी। अब नीचे गली में आहट सुन उसकी दृष्टि उधर न जाती और कभी उधर देखने लगती तो वहां देखने को कुछ न होने पर भी देखती ही रहती। जो कुछ वह देखती थी वह गली में नहीं, उसके मन में ही था। मैं अब भी कभी उस की ओर देख लेता परन्तु देखने से तुल-सा होता। दृष्टि टिक न पाती। इस से प्रायः उधर देखता ही न था।

वही तीसरे पहर का समय था, गुरो अपनी खिड़की में और मैं निचले बरामदे में। एक गहरी बौछार बरस कर पानी थम गया था। गुरो अपनी खिड़की की चौखट से सिर टिकाये नीचे खिड़की की ओर आंखें किये बैठी थी। मेरी दृष्टि उस की ओर गयी और फिर नीचे गली में।

वर्षा के बाद फजल और महम्दे की चीनी बत्तखें अपने चौड़े झिल्लीदार पंजों पर अपना बदन तौलतीं, चारे की खोज में गली में निकल पड़ीं। चौक की ओर से मास से लदे खच्चर भी गले में बंधे घुंघरू बजाते चले आ रहे

थे। बत्तखें खच्चरों से बिदक कर इधर-उधर हो जातीं। सहसा एक खच्चर का सुम एक चीना बत्तख की पीठ पर पूरा पड़ गया। खच्चर निकल गया। बत्तख छटपटायी, पर फड़फड़ा, अपनी पीली चोंच खोल बत्तख ने श्वास लेने का यत्न किया और दम तोड़ गयी।

खच्चर ने नहीं समझा क्या हुआ। खच्चरवाले ने देखा, खिजलाहट से एक ओर थूक, बत्तख को गाली दे, बत्तखों के मालिक के पहुँच जाने से पहले ही निकल जाने के लिये, खच्चरों को जल्दी से हाँकता हुआ चला गया।

दुर्घटना से बत्तख का यों मर जाना अच्छा नहीं लगा। उधर से दृष्टि हटाने के लिये गुरो की खिड़की की ओर देखा।—वह वैसे ही निश्चल चौखट से सिर टिकाये, अब भी कुचली हुई बत्तख को देख रही थी। दृष्टि फिर उसी ओर लौट गयी।

खच्चरों के सुमों से बिदक कर भाग गयी बत्तखें घटनास्थल पर लौट आयीं। उन्होंने कुचली हुई बत्तख को घेर लिया। उसे सूंघ, चोंच से उस के पर सहला; उसे सचेत कर सकने के यत्न में असफल हो एक-एक कर वे मृतक बत्तख को छोड़कर चली गयीं। रह गया केवल एक बत्तख जो अब भी अपनी चोंच कुचल गई बत्तख की चोंच में दे उसे उठाने का प्रयत्न कर रहा था, अब भी अपने पंजों से निश्चेष्ट बत्तख के शरीर को सचेत करने में लगा था। अपने मृतक साथी की उपेक्षा से वह बत्तख व्याकुल हो कुरला उठता परन्तु उसे छोड़कर जा न पाता। मन में करुणा का उच्छ्वास-सा उठ आँखें सजल हो आयीं। उस ओर से दृष्टि चुराने के लिये फिर गुरो की ओर देखा। वह अब भी अपलक निश्चेष्ट बत्तखों के व्यवहार को देख रही थी। उस की स्थिरता से धृष्ट हो, आँख या नाक पर आ बैठने वाली मक्खियों को उड़ा देने के लिये भी उसका हाथ न हिल पाता।

गुरो की दृष्टि का अनुसरण कर आँखें फिर बत्तखों के जोड़े की ओर चली गयीं। कुचली हुई बत्तख के बिछोह में वह जीवित बत्तख पागल हो गया। प्रेम और प्रबोध के उपचारों के बाद भी अपने जोड़े को अचल देख, बत्तख कुड़-कुड़ाकर प्रणय की अन्तिम क्रिया में व्यस्त हो गया। उस ओर देखते अच्छा न लगा, विशेष कर एक स्त्री की दृष्टि के सामने। आँखें फिरा लीं, परन्तु झुकी हुई दृष्टि गुरो की खिड़की की ओर से घूम कर लौटी। वह

अब भी उसी प्रकार निस्संकोच मृतक और जीवित बत्तख के जोड़े की काम-क्रिया को देख रही थी। गुरो के प्रति सहानुभूति होने पर भी उसका वह निस्संकोच और फूहड़पन भला न लगा। मोढ़े से उठ मैं ऊपर चला गया।

कुछ देर बाद कलमसिंह की मा की पुकार सुनाई दी। वह बहू पर बिगड़ रही थी—"साँझ होने को आई! थकी मादी लौट कर आई हूँ! क्या पानी लेने भी मुझे ही जाना होगा?"

देखा—गुरो अब भी चौखट से उसी प्रकार टेक दिये बैठी है। बिल-कुल स्थिर। सास की बात जैसे उसने सुनी ही नहीं। उसकी वह स्थिरता भयानक-सी लगी। उसी पल कलम की मा सिर पीट कर चीखती सुनाई दी—"हाय मैं उजड़ गई.........!"

चोट खा हृदय धक्क से रह गया। दृष्टि फिरा ली। नीचे पत्थर मढ़ी गली में दिखाई दिया—वही बत्तखों का जोड़ा। कुचली हुई बत्तख के ऊपर ही उस का साथी निर्जीव पड़ा था उस समय उस क्षुद्र जीव की ओर क्या ध्यान जाता?

गुरो की सास के विलाप से पड़ोस की स्त्रियाँ और मर्द आ जुटे। अनेक प्रकार से बुढ़िया के दुर्भाग्य और शोक का चर्चा हुआ। मुझे भी जाना पड़ा। रामलाल ने बिना किसी के कहे, कफन का कपड़ा ला दिया। शंकर खत्री अर्थी के लिए बाँस, फूस और रस्सी ले आया। दुर्भाग्य से उसी समय फिर बूँदें आ गयीं। धीरे-धीरे अर्थी बन रही थी और चर्चा चल रही थी गुरो की बद-किस्मती की—मरना तो था ही दस रोज पहले ही मरती! नसीबन, सुहागिन तो कहलाती। अर्थी पर फुलकारी पड़ जाती।

पानी रुका तो अँधेरा हो गया। श्मशान दूर था। फिर भी मोहल्ले में किसी ग़रीब का मुर्दा पड़ा रहे, यह कैसे हो सकता था। लालटेन जला दी गई। लोग अर्थी पर कन्धा लगाने को ही थे कि हवलदार साहब ने आ दारोग़ा साहब का हुक्म सुनाया—"लाश बिना तहकीकात के नहीं उठ सकती।" —बेबस लोग इधर-उधर खिसकने लगे। दारोग़ा साहब स्वयं कुछ दूरी पर खड़े रहे। रामलाल, शंकर खत्री और मैंने आगे बढ़, दारोग़ा साहब से बातें कीं।

दारोग़ा साहब को मामले में शक की गुन्जायश जान पड़ती थी। मरहूमा को कोई बीमारी नहीं थी। सुबह के वक्त पीपल वाले कुएं से पानी का घड़ा लाते उसे देखा था। बुढ़िया का सलूक उस के साथ अच्छा नहीं था! मरहूमा के खाविन्द ने अपनी पेंशन का वारिस अपनी बीबी को मुकर्रर किया था। बुढ़िया इस से खुश नहीं थी। बोले—"साहब, क्या किया जाय; हमें अफ़सोस है ऐसे वक्त सङ्गदिली से काम लेना पड़ता है लेकिन जुर्म की तहकीकात करना पुलिस का फ़र्ज़ है।"

पिछले दारोग़ा साहब होते तो और बात थी। रामलाल, शंकर खत्री और हमारे अपने लाला जी का उन से रसूख था। कसबे की इज्जत रखने के लिये बीसियों वारदातें दबा दी गयीं। दारोग़ा गुलजारीलाल खाने पीने के शौकीन थे। लोग कहते थे इन का पेट बड़ा है लेकिन आँखों में लिहाज़ भी था।

यह दारोग़ा साहब ऐसे रूखे हैं कि किसी की हिम्मत उन से कुछ कहने की नहीं होती। घर के और नीयत के भी वैसे ही हैं। पहले दारोग़ा साहब के यहां दो भैंसें थीं, तीन नौकर थे और दो घोड़ियाँ। इन की बेगम खुद रोटी थाप लेती हैं। दूध के लिये बकरी और सवारी के लिये मजबूरन एक टट्टू है। हरदम वर्दी डाँटे हैं जैसे दूसरा कोई कपड़ा है ही नहीं।

लाचार हो लौट आये। रात भर नींद न आई। दारोग़ा को शक है कि पेंशन हथियाने के लिये बुढ़िया ने बहू को कुछ खिला दिया। लाश होशियार-पुर जायेगी। तहकीकात का मतलब है शव की चीर-फाड़ (Post-mortom)। बुढ़िया हिरासत में ले ली गई थी। बुढ़िया के प्रति सहानुभूति का विचार नहीं आया परन्तु गुरो के शव की चीर-फाड़ के विचार से मन बैठा जा रहा था। दिल की धड़कन सहसा बन्द हो जाने से उस की मृत्यु हो गई थी पर क्यों? थानेदार साहब की तसल्ली के लिये क्या जवाब हो?

रात भर गुरो की मृत्यु के बारे में, दारोग़ा साहब को सतुष्ट कर सकने लायक कारण सोचता रहा। गुरो के हृदय की गति रुक कर उसकी मृत्यु हो जाने की परिस्थितियों पर गौर करते समय, केवल नीचे गली में बत्तख के कुचले जाने और दूसरी बत्तख के अपने साथी के लिये प्रणयाकुल और कामातुर हो प्राण दे देने की ही घटना दिखाई देती थी। वही क्षुद्र जीवों का व्यवहार! सहसा मन में ख्याल आया—अपने जोड़े की मृत्यु के दुख से पक्षी प्राण दे,

सती हो जाने की घटना ने गुंगे के मन पर आघात किया और वह सती हो गई। एक सती के शव के निरादर की बात सोच मन तड़प उठा। शेष रात नींद न आई। सुबह उठ दारोग़ा को सारी परिस्थिति समझाने का निश्चय कर पड़ा रहा।

दारोग़ा साहब रोज़नामचा लिये बैठे थे। अंग्रेज़ी में बोला इस से कुर्सी मिल गई। गत संध्या की मृत्यु के विषय में बात शुरू की। अपनी बकरदाढ़ी को थामे दारोग़ा साहब प्रकट में ध्यान से मेरी बात सुन रहे थे और 'जी''''जी' हुँकार भरते जाते थे।

बात पूरी होने पर उन्हों ने पूछा—"मास्टर साहब, आख़िर आप मौत की वजह क्या बतायेंगे ?"

गम्भीरता से उत्तर दिया—"विरह की पीड़ा''''सदमए मुफ़ारकत !"

"मुआफ कीजिये"—अपनी कुर्सी पर करवट बदलकर उन्होंने उत्तर दिया—"पुलिस की दफ़ा में ऐसी कोई चीज़ नहीं है।"

सती की मान-रक्षा के प्रयत्न में असफल हो, पुलिस की दफ़ा के सम्मुख सिर झुकाकर मैं क्षुब्ध और असहाय लौट आया।



रिजक

चौथे पहर अदालत से लौट मिस्टर खन्ना ने दरवाजे पर दस्तखत दी। भीतर से सांकल बन्द नही थी। दरवाजा खुल गया। कौतूहल से उन्हो ने सोचा, कौन उसकी प्रतीक्षा मे बैठा है? देखा तो बगल वाले सोफ़ा पर स्वयं मिसेज खन्ना बैठी थी और उनके समीप कोई दूसरी भले घर की स्त्री। खन्ना का एक बरस का बालक इन अभ्यागत भले घर की स्त्री की गोद में था। महिलाओं में धीमे स्वर में बात-चीत हो रही थी इसलिये पत्नी से चार-आँख हो जाने पर भी वे कुछ बोले नहीं।

हाथ की मिसिल को बैठक की तिपाई पर छोड़ खन्ना, साथ के कमरे से भीतर जा, कपड़े बदलने लगे। वे सोच रहे थे, यह कौन नई सहेली इन की आज आई हैं। पहले कभी देखा हो, याद नहीं पड़ता। देखने में बुरी नही। उम्र इन से कुछ कम ही होगी। बदन लम्बा और लचीला। आँखें काफ़ी बड़ा और रङ्ग भी साफ़। धोती या साड़ी पहनने का ढंग पढ़ी-लिखी जैसा। समानता के भाव से, सोफ़ा पर साथ बैठी है अवश्य पर एक झिझक-सी दिखाई पड़ती है।

स्निग्धता और कोमलता की छाप जो खास ढङ्ग के भोजन या कठिन श्रम न करने से, सौन्दर्य न रहने पर भी भले घर के लोगों के चेहरों पर बनी रहती है, अलबत्ता उतनी स्पष्ट न थी। धोती के किनारे में भी सौम्यता की अपेक्षा भड़क अधिक थी। यह सब बातें एक-एक करके न सोचने पर भी खन्ना के विचार में घूम गईं।

कुछ मिनिट बाद भीतर आ जब श्रीमती ने खन्ना के नाश्ते के लिये नींबू का शरबत जल्दी लाने के लिये नौकर को हिदायत की, खन्ना ने प्रश्न किया—"यह नई सहेली कौन थी ?"

श्रीमती ने बताया—उन के मकान के साथ की गली में चार रुपया महीने के जो क्वार्टर हैं, उन्हीं में वह लोग कुछ दिन पहले आये हैं। ऐसे ही पड़ोस में मिलने के लिये चली आई, बेचारी ब्राह्मणी है।

सामने रखे शरबत के गिलास की ओर न देख खन्ना ने शंका की—"रङ्ग-ढङ्ग तो चार रुपये महीने के क्वार्टर जैसा नहीं जान पड़ता।"

"औरत भली है"—श्रीमती ने विश्वास दिलाया, "बेचारे मुसीबत में हैं। तीन बच्चे हैं। मर्द बेचारा बेकार है। किसी के यहां काम करता था; मालिकों ने कह दिया, अब काम नहीं है। प्राइवेट नौकरी में यही तो खराबी होती है।"

बात को आगे चलाते हुए खन्ना ने पूछा—"तो फिर गुज़ारा कैसे चलता है ?"

"मायके में अच्छे खाते-पीते हैं, कुछ सहायता कर देते हैं।"—श्रीमती ने उत्तर दिया।

शरबत का गिलास पीते हुए जाने क्या सोच कर खन्ना ने कह दिया—"मायके में सभी स्त्रियों के छत पर छप्पन बीघे पोदीना होता है।"

यह मज़ाक श्रीमती को बहुत प्रिय नहीं जान पड़ा। मामूली तौर पर झसक कर कहा—"तो होने दो, तुम्हें क्या पड़ी है ?"

× × ×

इसके बाद रविवार के दिन दोपहर के समय खन्ना भीतर की बैठक में तख़्त पर तकिये के सहारे लेटे कुछ पढ़ रहे थे और श्रीमती नीचे दरी पर बैठी मशीन से मुन्ने के लिये नये फ्राक सी रही थीं। सहसा भीतर की ओर के दरवाज़े का परदा हटा। पड़ोस की वही नई सहेली बेतकुल्लफ़ी से चली आ रही थी। सहसा खन्ना को देख लज्जा से सिमिट कर पीछे हट गई। इस

सिमिट कर पीछे हट जाने में एक ऐसी झपट-सी थी कि खन्ना और श्रीमती दोनों ही की दृष्टि उस ओर गई। खन्ना के होठों पर मुस्कराहट फिर गई।

मशीन के हत्थे के पहिये को रोक पर्दे की आड़ से दृष्टि उधर पहुँचा श्रीमती ने पुकारा—"आ जाओ न, यहीं आ जाओ..........! क्या हर्ज है!" इस आग्रह से सहेली माथे का कपड़ा ज़रा आगे खिसका, दृष्टि नीचे किये भीतर आ गई। खन्ना की ओर पीठ कर, श्रीमती के बहुत समीप, वे जाकर कुलवधू के ढंग से बैठ गईं। शील अवसर और स्थान के अनुसार होता है। किसी को पीठ दिखाना असभ्यता है परन्तु कुलवधुओं का शील पुरुषों को पीठ दिखाने में ही है।

सहेली कुछ देर संकोचवश बिल्कुल चुप बैठी रहीं। हाथ में थमी हुई पुस्तक पर आँख गड़ाये खन्ना के उत्सुक कान मशीन की खड़खड़ में दबी जाती श्रीमती जी और पड़ोसिन की बात-चीत की ओर थे। श्रीमती के कुछ पूछने और बोलने का शब्द अलबत्ता अवश्य सुनाई दिया परन्तु सहेली का कण्ठ स्वर कैसा है, यह खन्ना नहीं जान पाये। वे प्रश्नों का उत्तर दे रही थीं या तो केवल सिर हिला सकेतों द्वारा या फिर इतने धीमे स्वर में कि कोई शब्द खन्ना तक पहुँच भी पाया तो वह केवल सिलाई के सम्बन्ध में था।

कुछ देर बाद खन्ना को मालूम हुआ—वे मुस्करा देती हैं और एक सीमा तक ज़िन्दा दिल हैं; लेकिन बहुत सम्भल कर और बच-बच कर लगभग दो घण्टे बैठे रहने के बाद विनय की एक लचक से उन्होंने चलने की आज्ञा माँगी।

खन्ना को पीठ की ओर से यह लचक बहुत शील-पूर्ण नहीं जान पड़ी। असभ्यता भी उस में कुछ नहीं थी, थी केवल एक सजीवता या चुलबुलापन।

फिर आने का वायदा कर उन के चले जाने पर खन्ना श्रीमती से बोले—"सहेली तुम्हारी है ग़ज़ब की......!" परिहास की गुदगुदी से आँखों और होठों पर मुस्कुराहट ला उन्होंने पूछा, "कैसे......?"

"देखा नहीं"—खन्ना ने हाथ की पुस्तक एक ओर रखते हुए कहा, "कमर नागिन सी बल खाती है!"

"पसन्द आ गई तुम्हें?"—मशीन की सीवन क्रिया समाप्त कर तागा तोड़ते हुए श्रीमती ने परिहास में बहते जाते हुए पूछा। उच्छृङ्खलता का

आनन्द देने के लिये तख्त पर पट लेट कर और तकिये को बाहों में दबाते हुए खन्ना ने उत्तर दिया—'अरे पसन्द क्या ? बस देख लेते हैं और तबिश दिल की बुझा लेते हैं''''अपने तो साधू आदमी हैं।'

नया बखिया आरम्भ कर श्रीमती बोली—"क्या कहना; बड़े साधू हैं; तभी तो कमर के बल की परख है। पुरषों को जाने क्या आदत होती है; यही सब देखा करते हैं।" इसके बाद करुणा-द्रवित स्वर में बोलीं—बेचारी दुखिया है। भले घर की लड़की है। तीन बच्चे हैं। मर्द है तो बेकार बैठा है। कहाँ तक मायके से लाकर कुनबा पाले ? सीना-परोना सीख ले या कुछ काम कर ले, तो भी कुछ हो। वैसे तो हिम्मती, होशियार है।"

इसके बाद सहेली के नाम का पता खन्ना को चल गया। सब लोग उसे 'केवल की माँ' कहकर पुकारते थे। थोड़ी-बहुत देर के लिये वह श्रीमती जी के यहाँ आकर सीने-पिरोने या घर के किसी दूसरे काम में मदद कर जाती। मुन्ना को बहुत प्यार से खिलाती। प्रायः खन्ना से देखा-देखी हो जाती। रोज-रोज की बात हो जाने से माथे का कपड़ा आगे बढ़ाने की जरूरत न रही। सिर के काले घुंघराले बाल साड़ी के आंचल से खूब दीखते रहते। मुख पर मुस्कराहट भी रहने लगी और वह दो एक-बात बोलने भी लगी। श्रीमती जी के सामने ही खन्ना भी बात कर लेते—"तुम्हारे 'उन्हें' कोई काम-वाम कहीं मिला नहीं ?"

नजर ऊपर उठा के वह उत्तर देती—"आप इतने बड़े आदमी हैं कहीं कुछ करें तब न ?"—या इसी तरह की कोई और बात।

'केवल की मां' श्रीमती को बहिन जी कह कर पुकारती थी। सालीपन की सम्बन्ध व्यवहार में आ जाने के कारण बहुत अधिक पर्दादारी और संकोच की जरूरत स्वयं ही न रही। ज्यों-ज्यों श्रीमती को 'केवल की मां' के संकट का हाल मालूम होता जाता, उनकी सहानुभूति उस के प्रति बढ़ती जाती। एक सन्ध्या जब खन्ना और श्रीमती भोजन के लिये थाली पर बैठने जा रहे थे, वह जल्दी में आई और श्रीमती को एक ओर बुलाकर चुपके से कुछ बात कर चली गई।

लौट कर श्रीमती ने करुणा-पूर्ण स्वर में कहा—"देखो न ! घर में दो पैसे नहीं कि तेल ला कर दिया जला सके। अन्धेरे में लड़के डर के मारे रो

रहे हैं।"—बरफ में दबे हुए बनारस के लँगड़े आम चाकू से काटते हुए, श्रीमती ने जिस विह्वल स्वर और मुद्रा में 'केवल की मा' का हाल कहा, उसे सुन कर तले हुए परवल से पराठे का ग्रास खन्ना को ऐसा जान पड़ा मानो मुँह में रेत भर गया हो। मुन्ना को आम की एक फाक दे श्रीमती ने नौकर से बच्चे को दूसरी ओर ले जाने के लिये कहा। कटा हुआ आम खन्ना की थाली में रखते हुए उन्हों ने पूछा—"कैसा है?"

ध्यान 'केवल की माँ' की ओर लगा रहने से कुछ बेपरवाही से आम चख खन्ना ने उत्तर दिया—"अच्छा है।" यह समझ कर कि आम पर खर्चे पैसे व्यर्थ गये, श्रीमती बोलीं—"लखनऊ में तो आम खाने का धर्म नहीं... मरे आधी ढेरी से तो कम आम देते ही नहीं। अब कोई ग़रीब आदमी डेढ़ रुपया रोज आम के लिये कैसे खर्च सकता है? और फिर आम क्या आ रहे हैं पैसे बरबाद करना है; स्वाद तो है ही नहीं।"

खन्ना के लिये आम का स्वाद बिलकुल नीरस हो गया। उन्होंने कहा—"सवा-डेढ़ रुपया जैसे कुछ होता ही नहीं। किसी ग़रीब के बाल-बच्चों का दो दिन पेट भर सकता है।...........उस के बच्चों के लिये दो-तीन आम दे देतीं?"

आम काटना जारी रख कर श्रीमती ने उत्तर दिया—"एक अठन्नी दे तो दी है। रुपया-दो रुपये पहले भी दो-चार बार ले जा चुकी है। ऐसे काम थोड़े ही चलता है। वह मरा—'केवल का बाप' कुछ करता ही नहीं। आठ-दस साल से बेकार है। यही, कहीं महीना-पन्द्रह दिन नौकरी करता है और फिर उस से कुछ होता नहीं। उसे नौकरी मिलती ही नहीं। ऐसे नालायक शादी क्यों कर लेते हैं?........बच्चे क्यों पैदा करते हैं?"

अविश्वास और विस्मय से खन्ना ने पूछा—"आठ-दस साल? तो गुजारा कैसे चलता है?" तब क्रोध में रहस्य का पुट मिलाते हुए श्रीमती ने उत्तर दिया, "अरे कुछ न पूछो इन लोगों की। महरी और मेहतरानी जाने क्या-क्या कहती थीं। पहिले जिस मुहल्ले में रहते थे, वहां इतना गन्द फैला कि बदनामी के मारे रहना मुश्किल हो गया, तब यहां आये हैं। बदनामी पीछे-पीछे यहां भी आ रही है।"

आशंका से सिर उठा खन्ना बोला—"तो तुम परमेश्वर के लिये इस बीमारी को न पालो ! अपनी इज्जत और हैसियत का तुम्हें कुछ खयाल है ?"

श्रीमती कुछ तिनक कर बोलीं—"किसी का दिया तो खाते नहीं कि दबते फिरें। कोई दुखिया अपना सुख-दुख कहने आये तो उसे कैसे निकाल दें ? वह बेचारी गरीब है तो उस में हजार ऐब हैं। दस बरस से उस निखट्टू और तीन बच्चों को पाल रही है सो नहीं दीखता। करे क्या ? वैसे औरत बुरी नहीं। पर जब तीन बच्चों को भूखा सिसकते देखे तो करे क्या ? बेचारी फूट-फूट कर रो रही थी अपने कर्मों को ? कमबख्त के लिये दुनिया में कोई काम ही नहीं रह गया। अरे मर भी जाता तो बेचारी की नाव एक तरफ लगती''''उल्टे धौंस देता है। मैंने समझाया कि यह जिल्लत और बदनामी की जिन्दगी भी क्या है ? तो रो कर कहने लगी जो कहो करने को तैयार हूँ।"

खन्ना तन्मयता से 'केवल की मां' की बात सोच रहे थे बोले—"तो वेश्या और क्या होती है''''''''बस जाहिर नहीं है।"

"हाँ तो फिर क्या करे।?"-- भोजन समाप्त कर थाली सरकाते हुए श्रीमती ने उत्तर दिया, "दुनिया भर में नंगा नाच नाचने से अच्छा ही है कि बच्चों को लेकर घर में बैठी तो है।"

खन्ना का स्वर कठोर हो गया—"तो यह लोग कुछ ऐसा ही काम क्यों नहीं कर लेते ? महरा और महरी भी तो आखिर गुजर करते ही हैं ?"

खन्ना के अविचार से कुछ खीझ श्रीमती बोलीं—"तुम कैसे यह सब कुछ कह डालते हो। बीस-बिसवे ब्राह्मण हैं। महरे का काम करने लगेगा तो क्या कम थुक्का-फजीहत होगी ? और फिर उस से ऐसा काम कोई करायेगा ही क्यों ? किसे आफत मोल लेनी है ?"

"मैंने उसे कहा, जीजी को बच्चा सम्भालने के लिये एक औरत की जरूरत है। भले आदमी हैं। उनके यहां दूसरे नौकर-चाकर हैं ही; बस बच्चे का काम है। तो कहने लगी—भई, और सब कुछ कर देंगे पर गूं-मूत हम से कैसे धोया जायगा ? आखिर तो ब्राह्मण हैं, लोग क्या कहेंगे !''''''यों तो गुप्ता बाबू से कह कर रेडक्रास में नर्स का काम सीखने लगे। काम भी सीख जाय और बीस-पच्चीस रुपया वजीफा भी मिलने लगे''''''''पर जात को क्या करें ?"

खन्ना को क्रोध आ गया, बोले—"मरने दो सालों को। सब कुछ करके भी ब्राह्मणपना बाकी है।"

पति के क्रोध को व्यर्थ बताते हुए श्रीमती ने धैर्य से कहा—"नहीं, आज कल मशीनी कसीदे के किनारे की साड़ियों का बहुत रिवाज चल रहा है। अपनी सिंगर मशीन के लिये दो-चार पुर्जे ख़रीद लें। अपने काम भी आयेंगे और वह कढ़ाई पर साड़िया ले आया करे। महीने में बीस पच्चीस साड़िया मैं ले दूंगी, क्या बड़ी बात है? उस रोज डाक्टरनी, महरोत्रा की बहू और न जाने कितनी ही औरतें कह रही थीं, कोई काढ़ने वाली नहीं मिलती। फिर किश्त पर अपनी मशीन ले लेगी। ख़याल है, काम कर लेगी। अभी आँख का पानी नहीं मरा है।"

'केवल की माँ' श्रीमती जी के यहाँ आती-जाती रहती। कभी घर से अपने कपड़े काट लाती और मशीन पर सी लेती। श्रीमती का कोई काम करती और बात-चीत भी चलती रहती। निस्संकोच के कारण खन्ना से दो टूक मज़ाक भी चलता रहा। कभी खन्ना कह देते; आज साड़ी ज़ोरदार पहने है? कभी खन्ना के दफ़्तर में अकेले रहने पर और पानी का गिलास मांगने पर श्रीमती कह देतीं—"जाओ, जल दे आओ।"

आशंका और भय से आँखें फैला, कमर को तनिक हिला 'केवल की माँ' कहती—"हाय हमें डर लगता है"—और फिर गिलास ले दफ़्तर में चली जाती।

संकोच नहीं रहा। 'केवल की मां' और श्रीमती को एतराज न होने पर मज़ाक में भी कोई भय न था। कोई विशेष अभिप्राय न होने पर यों ही ज़रा मज़े के लिये खन्ना 'केवल की मां' के अकेले दफ़्तर में या बैठक में आ जाने पर कह देते—"बैठिये जनाब!" और लहू में मामूली सी चिनचिनाहट हो जाती। जैसे बिहारी सतसई के दोहे पढ़ने से या फ़िल्म में नायक-नायिका को एकान्त में देखने से होता है।

कसे हुए ब्लाउज़ में उसके जोबन और गेहुँआ रङ्ग की ठोस बाहों पर नज़र दौड़ाने से एक स्फूर्ति-सी अनुभव होती। श्रीमती के अत्यन्त कोमल और खूब गोरे रंग में भी वह बात न थी—चाहे श्रीमती के जोबन का उफान उतर जाने के कारण हो या खन्ना के लिए उसमें नवीनता न रहने के कारण।

जैसे नित्य परोठे खाने वाले का मन कभी बाजरे की रोटी और अमिया की चटनी की ओर लपक जाता है।

×　　　　　　　　×　　　　　　　　×

खन्ना ने एक दिन पूछा—"तुम्हारा मायके का नाम क्या है ?"

"हाय !"—ठोढ़ी झुका और आँखें फैला केवल की माँ ने कहा, "मायके का नाम कहीं बोला जाता है ?"

खन्ना ने रूठ कर कहा—"हमें नहीं बताओगी, अच्छा न बताओ।"

मेज पर शरीर का बोझ डालते हुए वह बोली, "अच्छा बतायें ?........ चम्पा ! किसी से कहना नहीं।"

साड़ी और ब्लाउज की बात का जिक्र खन्ना ने किया। चम्पा ने कहा—"इतने बड़े वकील साहब कहलाते हैं, हमें तो कभी एक भी साड़ी नहीं ले दी। देखो, सब छन गई !" अपनी साड़ी की ओर संकेत कर उस ने कहा।

"अच्छा ले देंगे"—खन्ना ने उत्तर दिया। वे जानते थे, श्रीमती कई धोतियाँ चम्पा को दे चुकी हैं पर शायद वह एक अच्छी, नई सी धोती चाहती है।

चम्पा का साहस बढ़ चुका था। खन्ना को अकेले में देख कभी वह रुपये-दो-रुपये की फर्माइश भी कर देती। खन्ना का विचार था, चम्पा को जो कुछ दिया जाय, वह श्रीमती ही दें ताकि मामला साफ रहे।

खन्ना ने कहा—"अपनी बहिन से क्यों नहीं कहती ?"

उनकी कुर्सी के बिलकुल समीप आ चम्पा ने उत्तर दिया—"वाह, जो हम तुम से कह सकती हैं सो बीबी जी से थोड़े ही कह सकती हैं।" आंखों में आंखें डाल, उसके देखने का ढंग ऐसा था कि खन्ना मुस्कराये बिना न रह सका। उस ने देखा, खन्ना की आंखों में लाल डोरे फिर आये हैं और उस का कण्ठ कुछ बोझल हो गया है। सहसा वह बोली, "अब चलें, कोई आ जायगा, हमें डर लगता है।"

खन्ना बोला—"जरा ठहरो न !" ठहर वह गई और मेज के पास मंडराती रही। अपनी पहुँच के भीतर उस के शरीर के इठलाने से, खन्ना

सोचने लगा। इसके शरीर के स्पर्श से प्राप्त होने वाली अनुभूति जाने कैसी होगी ?

उस की बांह पकड़ खन्ना ने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। वह जैसे हड़बड़ा कर उसके कन्धे पर आ टिकी। खन्ना की बांह उसकी अशिथिल कमर पर चली गई। खन्ना के लिये यह अनुभूति अत्यन्त रोमाञ्चकारी थी जैसे उस का मस्तिष्क घूम-सा गया। उसे समेटते हुए खन्ना ने पूछा—"चम्पा, हम से यों भागती क्यों हो ?" चम्पा ने शिथिल हो जवाब दिया, "अरे हम क्या भागेंगे ! हम गरीब आदमी हैं, तुम बड़े आदमी हो !" खन्ना कुण्ठित हो चुप रह गया।

चम्पा ने मेज के नीचे फैले अपने पांव से खन्ना के पांव का अंगूठा दबा कर पूछा—"चुप क्यों हो गये ?" जबरदस्ती मुस्कराने का यत्न कर खन्ना ने उत्तर दिया, "तुम कहो !"

चम्पा फिर उसकी बगल म पहुँच गई और खन्ना की बांह उसकी कमर में परन्तु मन में उस के एक भीरुता समा रही थी। चम्पा ने कहा—"हमें दस रुपये का बड़ा जरूरी खर्च है ! चाहे हम फिर फेर देंगे।"

किसी काम के लिये श्रीमती ने रुपये खन्ना को दे रखे थे। यों रुपये उस के अपने पास रहते न थे। उस समय दस का एक नोट निकाल कर दिये बिना खन्ना रह न सका।

रुपये का हिसाब समझाते समय खन्ना को कहना पड़ा, दस रुपये जाने कहां गिर गये या कहीं गलती से एक की जगह दो नोट दे दिये।

श्रीमती ने चिढ़ कर कहा—"रुपया, अठन्नी तो खोया ही करते थे अब नोट भी खोने लगे। ऐसी ही भारी आमदनी है न ? तुम्हारी बेपरवाही की तो हद है !" बात टल गई।

× × ×

उस दिन था रविवार। खन्ना चाहते थे, बैठक में बैठना और श्रीमती कह रही थीं—"फायदा क्या ? यहीं तख्त पर बैठो। दो जगह पंखा चलाने से लाभ ?"

"एक मिसिल जरूरी देखनी है कल तारीख है।"—कह कर खन्ना टाल गये और दफ्तर में जा बैठे।

चम्पा कभी गली के दरवाज़े से और कभी सड़क से आती थी। सड़क के दरवाज़े से वह आयी और सांकल लगा ली। फिर धीमे स्वर में पूछा—"बीबी जी कहां हैं?"

"भीतर।"—खन्ना ने उत्तर दिया।

"यह दरवाज़ा मूंद दूं।"—उसने पूछा और बहुत धीमे से मूंद दिया।

चम्पा सामने बैठ गई। खन्ना की नसों में रक्त का वेग तीव्र होने लगा। चम्पा घर पर अभी झगड़ा करके आ रही थी। कानों के बुन्दे उसने पच्चीस में बनिये के यहां रखाये थे, सो सूद समेत चालीस के हो गये थे। बनिया कहता था—दो दिन में छुड़ा नहीं लोगे तो हम बेच डालेंगे, फिर मत कहना। खन्ना चाहे तो चालीस दे सकता था परन्तु कैसे? अभी इतना ज़ोर दे तो किस बात पर?

खन्ना से सट कर खड़ी हो उसने कहा—"कहो, उस रोज तुम कहते थे आने को?" खन्ना को मुग्ध भाव में निश्चल बैठे देख उसे उकसाने के लिए चम्पा ने कहा—

"तो फिर हम भीतर जाँय बहिनजी के पास?" चम्पा ने प्रश्न किया।

"नहीं, बैठो तो"—खन्ना ने उत्तर दिया।

बगल की कुर्सी पर चम्पा बैठ गई। कमर हिला, दायें हाथ की उंगली ठोढ़ी पर रख, नजर तिरछी कर उसने फिर पूछा—"कहो न?"

उस की ओर देख खन्ना की आँखें झुक गईं, मेज के नीचे अपने पांव से खन्ना का पांव गुदगुदा, चम्पा ने कहा—"क्या हो तुम भी?......"

"हम बतायें, तुम औरत हो और हम मर्द हैं?"—खन्ना ने उत्तर दिया।

इस ललकार से सचेत हो खन्ना ने चम्पा की बांह जोर से दबाई। उसी समय धीमे से दरवाजा खुला और पर्दे की आड़ से श्रीमती ने झाँका। झाँक कर कुछ क्षण वे जैसे समझती रहीं और फिर लौट गईं।

× × ×

तीसरे दिन खन्ना के मकान के बगल की गली में चार रुपये वाले क्वार्टरों के सामने हाथ का ठेला खड़ा था। ठेले पर फटे वस्त्र और टूटे बक्सों की मामूली सी गृहस्थी लादी जा रही थी। पड़ोसी वितृष्णा से देख कर कह रहे थे—"लच्छन ही ऐसे हैं ....किसी भले पड़ोस में गुजारा हो कैसे ?"

ऊपर दो मंजिले की खिड़की से देखकर महरी ने श्रीमती से कहा—"वह देखो, 'केवल की मां' सामान लिए चली जा रही है।"

श्रीमती उठी नहीं। घृणा से उन्होंने कहा..."मरे कलमुंही........बहते बिच्छू को जल से बाहर निकालो, वह पहले उंगली में ही डंक मारता है।"

एक हाथ में लालटेन, दूसरे में छोटे लड़के की उंगली थामे 'केवल की माँ' बड़बड़ाती चली जा रही थी—"अरे कोई किसी का रिजक थोड़े ही छीन लेगा। भगवान सब के जुल्म देखते हैं।....उनकी धरती पर सब को जगह है। आदमी का बस चले तो कोई किसी को जीने थोड़े ही दे....।"



भगवान किसके ?

पिता जी धार्मिक प्रवृति के थे। पढ़े-लिखे लोग उन्हें श्रद्धा से महाशयजी कह कर पुकारते। जिस ओर वे जाते, आदर-भाव से नमस्ते के लिए हाथ उठने लगते। ईश्वर में उन का विश्वास अखण्ड और अथाह था। प्रार्थना करते समय उन का चेहरा करुणामय और स्वर गद्‌गद् हो जाता। आर्य समाज मन्दिर में प्रति रविवार को वे ही सामूहिक प्रार्थना कराते। वे प्रार्थना के शब्द बोलते जाते, दूसरे सज्जन नेत्र मूंदे अपने मन में उस प्रार्थना का अनुमोदन कर भगवान से प्रार्थना कर लेते।

पिता जी की अभिलाषा थी, उन की सन्तान भी ईश्वर की भक्त और सदाचारी बने। हम सभी बहिन-भाइयों को वे अपने साथ प्रति रविवार आर्य-समाज मन्दिर में ले जाते। वहाँ हम लोग भगवान की स्तुति के भजन गाते, हवन और प्रार्थना करते और धार्मिक उपदेश सुनते। इस के अतिरिक्त प्रतिदिन घर पर भी सुबह-शाम सन्ध्या और प्रार्थना के समय भी सब बहिन-भाई आंखें मूंदे, पालथी मारे संध्या और प्रार्थना में योग देते और भगवद्-भक्ति के भजन गाते।

पिताजी ने हम लोगों को 'आर्यगायन' और 'आर्य-संगीत रत्न-माला' के अनेक भजन कंठ करवा दिये थे। संध्या के बाद उन के स्वर में स्वर मिला हम सब लोग गाते—

ओम् जय जगदीश हरे,
पिता जय जगदीश हरे······

मै मूरख, खल, कामी
कृपा करो भरता ! इत्यादि

पिताजी नित्य प्रार्थना करते—"हे करुणा के सागर ! हम पाप के कीचड़ में फंसे हुए अधम प्राणी हैं, आपकी दया का ही सहारा है। हमारे मन में राग, द्वेष, लोभ, मत्सर सभी दुर्गुण भरे हुये हैं। हे दयामय, हमारे हृदय की अपवित्रता को दूर कर शुद्धता दीजिये ! हे परम पिता, हमारे घोर अपराधों को क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये......." वे दोनों हाथ जोड़ मस्तक नवा देते और फिर "ओम् शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !" कहकर आंखें खोलते।

पिता जी हमें उपदेश देते—"सर्व शक्तिमान परम पिता परमात्मा से हमारा कोई भी अपराध छिपा नहीं रह सकता। वे माता, पिता से भी अधिक दयालु हैं। सच्चे हृदय से अपने अपराध के लिये उन से क्षमा मांगने पर वे हमारे पापों को तुरन्त क्षमा कर देते हैं और हम पाप के दण्ड से बच सकते हैं।"

गम्भीर हो प्रार्थना में मन लगाये रहने का यत्न करने पर भी चित्त प्रायः भटक जाता। कभी गली में गुल्ली-डण्डा खेलते लड़के दिखाई देने लगते, कभी चौके में घुइयां बनाती माता जी दिखाई देने लगतीं, कभी पड़ोस की छत पर गुड़िया का खेल खेलती लड़कियां। पिता जी ने यह भी उपदेश दिया था कि मन में पाप होने पर चित्त भगवान की उपासना में नहीं लगता। हम मन को वश में करने का यत्न करते रहते परन्तु जाने कब और कैसे भगवान का ध्यान अंजली की अंगुलियों में से जल की भांति फिसल जाता।

अपने पापी मन को समझाते-समझाते विचार आया—मैं कौन-कौन पाप करता हूँ ? उस ग्यारह वर्ष की अवस्था मे किसी भी पाप का रूप ध्यान में ठीक से न जंचता। जिन-जिन पापों के विषय में धर्मोपदेशों में जिक्र सुना था, उन में से किसी का भी करना याद न आया। तब मन में एक क्षोभ-सा हुआ। कोई भी तो ऐसा पाप नहीं जिस के लिये सच्चे हृदय से क्षमा मांग भगवान् का प्यारा बन सकूं। तब फिर भगवान् मुझ पर अनुग्रह किस बात के लिये करेंगे ? कैसे मैं बाल्मीकी ऋषि की भांति तपस्वी बन सकता हूँ ?

भगवान की दया और उन का प्रेम पाने के लिये, सच्चे हृदय से उन से क्षमा मांगने के लिये, एक पाप करना आवश्यक हो गया।

उस दिन संध्या स्कूल से लौटते समय पंसारी की दूकान पर खड़ी भीड़ मे छिप कर एक नारियल का टुकड़ा चुरा लिया। अपनी गली के समीप बाजार मे मुहल्ले की लड़की को देख कुचेष्टा के संकेत से गालियां दीं।

उस दिन सांझ को पिता जी के साथ बैठ संध्या करने के पश्चात् अपने किये पापों को याद कर सच्चे पश्चाताप से आंखों में आंसू भर, गद्गद् कंठ से भगवान् से प्रार्थना की—"मैं खल और कामी हूँ, मेरा हृदय पाप से पूर्ण है। हे परम पिता, मेरे अपराधों को क्षमा कर अपनी श्रद्धा और भक्ति का दान दीजिये!" अनुभव किया कि आज प्रार्थना करने से मुझे भी पिता जी के समान ही सन्तोष हुआ है। उस दिन भगवान् पर विश्वास कर अपने पाप क्षमा कराने का गर्व मन में ले रात भर गम्भीर बना रहा।

सुबह-शाम प्रार्थना के बाद और भोजन से पहले पिता जी की आज्ञा से माता जी हमें पढ़ने बैठा देतीं। मैं रात की गम्भीरता के कारण बस्ता खोले चुपचाप पुस्तक से पाठ याद कर रहा था। छोटी बहिन की दृष्टि बस्ते में छिपे नारियल के टुकड़े पर पड़ गई। नीरा ने नारियल का टुकड़ा निकाल लिया। इस टुकड़े के लिये नीरा और केवल में झगड़ा हो गया। माता जी के घटना-स्थल पर पहुँचने पर प्रश्न उठा—आखिर यह गरी का टुकड़ा आया कहां से?

अपने अपराध के लिये भगवान् से क्षमा मांग ही चुका था। वह अपराध परम पिता परमात्मा पिछली संध्या क्षमा कर ही चुके थे। हाथ जोड़ अपना अपराध स्वीकार कर ही रहा था कि पिता जी भी बैठक से ऊपर आये।

गम्भीर चेहरे और क्रोध-पूर्ण आंखों से उन्होंने मेरी चोरी का अपराध सुना। मेरे छोटे से गाल पर उन के लम्बे-चौड़े हाथ का एक थप्पड़ दायें से और दूसरा बायें से पड़ा। दोनों कान सुन्न हो गये परन्तु फिर भी खूब ऊंचे स्वर में उनके बोलने के कारण सुन सका—मै चोर बदमाश हूँ और मुहल्ले की लड़कियों से छेड़खानी करता हूँ, चोरी करता हूं। छोटे भाई को उन्होंने नीचे से अपना मोटा बेंत लाने की आज्ञा दी।

थप्पड़ से बचने के लिये दोनों कानो पर हाथ रख लिये। आंखो से आंसू बह रहे थे, पांव कांप रहे थे और मैं भगवान को पुकार रहा था—"हे दयामय,

कल कितने सच्चे और पश्चात्ताप पूर्ण हृदय से मैं अपने पाप के लिये क्षमा माँग चुका हूँ। हे परम पिता, तुम मेरा अपराध क्षमा कर चुके हो। जल्दी आओ और अपने भक्त को बचाओ !"

परन्तु भगवान के पहुँचने से पहले ही पिता जी की धमकी से काँपता हुआ छोटा भाई नीचे से मोटा बेंत ले कर आ पहुँचा। एक साथ दो अपराधों की सजा मिली। मैं प्राय: निष्प्राण हो फर्श पर बिछा दिया गया।

दिन भर रो-रो कर सूजी हुई आँखों से मैं बिसूरता रहा—भगवान् ने जब क्षमा कर दिया था तो पिता जी ने क्यों मारा ? क्या मेरा अपराध क्षमा हो जाने की बात भगवान् पिता जी से कहना भूल गये या भगवान् ने मेरा अपराध क्षमा ही नहीं किया था ? कितने निश्छल हृदय से भगवान् के सामने अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा क्यों नहीं हुआ ? और क्या भगवान् केवल पिता जी की ही बात मानते हैं, मेरी नहीं ?

तब निश्चय हो गया कि पिटने के लिये ही भगवान् ने हमे छोटा बनाया है। मैं प्रार्थना करने लगा—हे भगवान् शीघ्र ही मैं बड़ा हो कर बलवान हो जाऊं.........ताकि मुझे कोई न पीट सके।



नमक हलाल

गलियारे, खेतों की मेंढ़ पनघट, गाँव की गली जहाँ कहीं भी भदई निकल जाता, विनय से रसीली आँखों और मुस्कराहट से पाय लागन, राम-जुहार और जयरामजी बखेरता जाता। गाँव के छोटे-छोटे रेंगते बच्चों से ले कर, लाठी टेक चलने वाली बुढ़िया तक में भदई का सौख्य था। शील से वह ऊँची जात के सभी लोगों को मालिक-मालकिन पुकारता। जो इस श्रेणी में न आते वे उस के भैया, दद्दा, जीजी थे।

मथैयापुर और मथैयापुर की जिलेदारी में भदई का व्यक्तित्व दोहरा था। सबका भला और हँसोड़ भदई, मथैयापुर की जमींदारी कचहरी का गुड़ैत (सिपाही) था। उस के अपने सरल, मिलनसार व्यक्तित्व के पीछे उस के पद का आतंक था। घास का भारी गट्ठर सिर पर उठाये बलई की पासिन को यदि भदई खेत की मेंढ़ पर हाँफते देख पाये तो उसका बोझ अपने सिर पर उठा, गोइरन तक पहुँचा देता। उसी साँझ जिलेदार साहब जमींदारी की सीर पर काम के लिये बेगार में बलई की पासिन को झोंटा पकड़ घसीट लाने का हुक्म दे दें तो भदई रूखी आँखों से पासिन के सिर में धौल जमा, सचमुच उस का झोंटा पकड़ उसे खेत में ला खड़ी कर दे। उस समय पासिन के बिल-खते बच्चों की चीख-पुकार भी भदई के कान में नहीं पड़ सकती थी।

भदई का बाप चेतू भी अपनी जवानी में रियासत का गुड़ैत रहा था। दो रुपया माहवार तनख्वाह और 'सरकार' से चार बीघा की मुआफी थी। 'सरकार' ही उस के सर्वेसर्वा थे। भदई का बड़ा भाई जितई खेती-बारी में

व्यस्त था। भदई को हल-बैल से काम न था। वह बाप की जगह जिलेदार कोट में गुड़ैती करने लगा। भौजाई के ताने सुन, घर छोड़ कर, वह कोर्ट की चौपाल में ही रहने लगा और पूरा सिपाही बन गया।

राजा साहब को भदई का यौवन के कुन्दन से दमकता शरीर और भक्ति के अनुराग से भीजी आँखें कुछ ऐसी रुच गई कि उन्होंने उसे जिलेदार के थाने से महल की कचहरी में बुला लिया। गर्व से माथा ऊंचा किये, कन्धे पर लाठी धरे वह शरीर-रक्षक के रूप में राजा साहब की अर्दली में बना रहता।

कचहरी से उसकी तनख्वाह तीन रुपया माहवार बंध गई। पट्टा बदलाई या वसूली पर चार-छः आने पट्टे पीछे मिलता रहता। रियासत से इतनी तनख्वाह कभी किसी प्यादे को न मिली थी परन्तु भदई जैसा सिपाही भी रियासत में कभी क्या हुआ होगा? उस के लिये भाई-बाप, धर्म-इमान सब सरकार का हुक्म था। राजा साहब की शक्ति का अस्तित्व मथैयापुर के हलके में भदई के छरहरे कसरती बदन और ताम्बे के तार से गाठ-गाठ बंधी लाठी के रुप में ही था। यों भदई हलके भर का गुलाम था परन्तु गुड़ैत के रूप में रियासत की सरकार की शक्ति का आतंक। ब्याह भदई का बारह बरस की आयु में ही हो गया था। जवानी की ड्योढ़ी के बाइस बरस पूरे होते-होते उसकी छबीली बारिन, डेढ़ बरस के कल्लू को छोड़ आंख मूंद गई। बप्पा और भौजाई के हजार ताने सुन कर भी भदई कल्लू को भौजाई के आंचल में सह जाने के लिए तैयार न हुआ। संसार में अपने एक-मात्र 'अपने' को, अपने कलेजे के टुकड़े को वह किसी दूसरे की दया पर कैसे छोड़ देता? कल्लू बाप के वात्सल्य और जमींदार के विशाल चौके के टुकड़ों पर पलता रहा।

भदई मुंह अँधेरे उठ धरती माता के चरन छू, बदन में तेल लगा कसरत करता। जब से उसने रसौली रियासत के पहलवान मिर्जा को अखाड़े में चौबीपाट लगा पछाड़ दिया था, राजा साहब ने प्रसन्न हो उसे कोठी से आधा सेर भैंस का दूध बांध दिया था। गांव के ब्राह्मण-ठाकुरों के पट्ठे भदई के पुष्ट, चिक्कण, दमकते शरीर को ईर्षा से देखते। उन्हें न कसरत के लिए अवसर था न आवश्यकता। खेती के श्रम से उनके शरीर हारे और टूटे रहते। जिन्हें पेट भर भोजन कठिनता से मिल पाये, भोजन पचाने के लिए कसरत का सवाल उनके लिए कैसा? वे ताना देते—"भइय्या, जुलाई के

हारे बैल सांड़ों के मुकाबिले क्या ठहरेंगे ?" इस ईर्षा का उत्तर भदई देता, "जिसका खाते हैं, उसके लिए हथेली पर सिर रखे भी तो हमीं घूमते हैं।" उस का लाल लंगोट, बंधी हुई लाठी और दबड पेलने के गुम्मे तेल से भीजे रहते। इन्हीं का उसे शौक था।

महल की जवान चाकरनियाँ सटी हुई मिर्जई में उसके उभरे चौड़े सीने और धोती के फेटे में कसी जंघाओं की झलक से गुदगुदी अनुभव कर, उस की उपेक्षा से कुंठित हो, तिर्छी निगाहों से ओंठ खिचका कुछ कह जातीं। भले घर की बहुओं की आंखें भी उसे देख गिरा जातीं। वह प्रयोजन-निष्प्रयोजन उसे किसी बहाने 'भइया' कहकर तृप्ति अनुभव कर लेतीं। लेकिन भदई का ध्यान उस ओर था ही नहीं। लंगोट का सच्चा वह तृप्ति अनुभव करता था अपने संचित, सुरक्षित यौवन की शक्ति के मद में। बोली-ठोली और दुचकारी का उत्तर वह गाली और उपेक्षा से देता। उसे अनुराग था केवल 'सरकार' के हुक्म से।

× × ×

फागुन बीत गया परन्तु होली का मद अभी हवा में शेष था। पृथ्वी पर बावली हवा की ठेलमठेल से क्षुब्ध हो भूसे और धूल के कण अधर में लटक रहे थे। क्षितिज पर फैली अमराइयों की ओट म छन कर आती सूर्य की किरणों में वे सब सुनहले हो रहे थे। मंड़ाई और ओसाई के श्रम से चूर किसान सफलता के उत्साह में थकावट अनुभव न कर अपने श्रम का फल बटोरने में लगे थे।

राजा साहब मथैयापुर कार में लखनऊ से लौट रहे थे। तुरई तक जरनैली सड़क है और आगे पाँच मील पतला और कसछा की राह कच्चे में होकर रियासत की कोठी तक जाना होता है।

राजा साहब की कार कमछा के खलिहानों के पड़ोस से गुजर रही थी। ढोलक की गमक के साथ नारी कण्ठ का आकर्षक स्वर सुन उन्होंने गाड़ी की खिड़की के काँच से झांका। कुछ काँच पर जमी धूल और कुछ गाड़ी की रफ्तार, स्पष्ट कुछ दिखाई नहीं दिया। इमली के पेड़ के नीचे गोल बांध कर खड़े लोगों की भीड़ में से एक गोरी-गोरी सी, छरहरी औरत की झलक दिखाई दी और गाड़ी निकल गई।

ड्राइवर ने घूमकर कहा—"हुजूर, यही है वह बेड़िनी''''नसिया !"

जल्दी में राजा साहब जो कुछ देख पाये उस से उनकी आंखों में चमक आ गई। मुस्कराहट दबा कर बोले—"चीज तो बुरी नही।"

"इस मे क्या शक ? हुजूर की परख का क्या कहना!"—विनय की मुस्कराहट से झुक कर मैनेजर ने समर्थन किया।

आँखें सड़क की ओर कर ड्राइवर कहता गया—"गरीब परवर, खादिम ने तो अर्ज किया ही था लेकिन देखे बिना अन्दाज मुश्किल था। सूरत क्या है, चेहरे का रंग जैसे सोना-चम्पा! सरकार तस्वीर समझिये! और गला है, जैसे मस्ती मे आई कोयल! गरीब परवर, बीस की भी नहीं होगी। ऐसी कच्ची, जैसे लखनऊ की ककड़ी की बतिया। ईमान की कसम सरकार, जैसे बहिश्त से परी उतर आई हो पर शोख भी ऐसी है कि बात-बात मे अँगूठा दिखाती है।"

राजा साहब की दृष्टि आकर्षित करने के लिये, सीट पर कुछ आगे झुक मैनेजर साहब बोले—"ग़रीब परवर शहर के रंग तो हुजूर की बदौलत रोज़ ही देखते हैं। उन पिजरों की मैनाओं की चीखें तो रोज़ ही सुनते हैं। आज यह जंगल की कुंवरी फुदकती हुई हुजूर के कदमों में हाज़िर हुई है। इसे भी देखा जाय, हर्ज़ क्या है ? ग़रीब परवर, दिल्लगी ही रहेगी।"

ज़िलेदार की गढ़ी के समीप से जाती हुई मोटर पल भर को थम गई। भोंपू की आवाज सुन, ज़िलेदार ज़मीन तक झुक सलाम करते हुये दौड़े चले आ रहे थे। आगे बढ़ मैनेजर साहब ने उनसे बात की। ज़िलेदार ने सिर झुका राजा साहब के सुन सकने लायक स्वर में विश्वास दिलाया—"हुजूर के गुलाम हैं। अन्नदाता के हुक्म से सब ठीक हो जायगा।"

अगली साँझ कोठी पर नसिया का मुजरा हुआ। गैस की रोशनी थी। नसिया भरसक बन संवर कर आई थी। पीली बुंदकी का लाल लहंगा, गोटा टंकी काली ओढ़नी और गैस के उजाले में काली दिखाई पड़ती हरी मखमली अंगिया में आधे कटे नारियल से दबाये।

नसिया के मर्द ने घुटने के नीचे दबी ढोलक पर थाप दी। नसिया आरसी पहने अंगूठे और तर्जनी से ओढ़नी उठा-उठा ठुमकने लगी। ढोलक की गति द्रुत होने लगी और उसके साथ नसिया के चंचल पांव। वह चहकी

सी नाचने लगी। नाच से छतरी की भाँति फैल गये लहँगे की छाया में टखनों पर बँधे घुंघरू और पयजेबों के ऊपर, खरादे हुये पाये-सी सुडौल गोरी पिंडलियाँ थिरक रही थ द्रुत-गति से उसके घूम जाने से ओढ़नी में हवा भर सीने का उभार उघड़ आता। उसकी गोरी-गोरी बाहें और काली वेणी सफ़ेद और काले सांपों की भांति लहरा रही थीं। राजा साहब की बगल में बैठे मैनेजर उचक-उचक कर उनके कान में कुछ कह देते। राजा साहब के नेत्र कभी फैल जाते और कभी अधमुंदे से रह जाते। चेहरे पर एक दबी-सी मुस्कराहट आकर विलीन हो जाती।

नसिया सांस लेने को पल भर थमी। मैनेजर साहब कुछ कह पायें इस से पहले ही नसिया दूसरे नाच में ठुमकने लगी। भाव बता वह गाने लगी—
"चितै दे हमरी ओर, करक मिटजै रे............

हाय रे मोर सइयां........।

नसिया जो कुछ गा रही थी उसमें कला का परिष्कार न था। मन्द और कोमल का उसे ज्ञान न था। वह अन्तरा और स्थायी का भेद भी न जानती थी। वह केवल अनावृत्त वासना का संकेत था। वह सीधी-सादी गांव की बोली में ग्राम्यवधू की उत्तेजक कामना की बात कह रही थी जो 'पुरुष' को पुकारती है, उसके लिये छटपटाती है। नसिया का भाव दर्शन भी परिष्कृत संकेत मात्र नहीं, उग्र था। अपनी नग्नता के कारण वह प्रबल और अदम्य हो रहा था। समीप बैठे मैनेजर और पीठ पीछे खड़े ड्राइवर की वाह-वाह में योग देने के लिये राजा साहब भी मुस्करा देते। एक अशर्फ़ी मंगा कर उन्हों ने नसिया को अपने हाथ से भेंट की।

मुजरा समाप्त होने पर नसिया अपने मर्द और देवर के साथ चलने को हुई। मैनेजर साहब अलग अकेले में राजासाहब से बात कर रहे थे। ड्राइवर को पुकार उन्होंने कुछ समझाया। ड्राइवर लपक कर नसिया और उसके मर्द के पास आकर बोला—"कहाँ है तुम्हारा डेरा, बमछा में? अब इतनी अबेर इतनी दूर क्या जाओगे? कोस डेढ़ से कम क्या होगा? उजाड़ में अकेले जाओगे? यहीं पड़े रहो चटाई-चदरा मिल जायगा।"

"नहीं अन्नदाता,...हुकुम हो, जायेंगे"—नसिया के मर्द मनसा ने कहा, "डेरे पर दूसरे लोग राह देखते होंगे"

ड्राइवर ने फिर समझाया—"अरे उजाड़ बियाबान है। इस हल्के के लोग बड़े सरकश-बदमाश हैं। कहीं कुछ और आफ़त सिर लो! अंटी में सोना लेकर ऐसे रात-बिरात नहीं चला जाता।"

अपनी दो हाथ की लाठी छू मनसा ने उत्तर दिया—"अरे मालिक की दुआ से देस-बिदेस सब ऐसे ही फिरते हैं।"

ड्राइवर के बहुत समझाने से भी मनसा रात कोठी पर बिता देने के लिये तैयार नहीं हुआ। दो-चार अशर्फ़ी और पा जाने की आशा पर भी नहीं बल्कि आशंका से मुंह बाये खड़े अपने भाई को धमका कर उसने कहा—चलता है कि नहीं, मुंह बाये क्या देख रहा है?" हाथ में थमी लठिया से राह दिखा उसने नथिया को भी डाँट दिया, "चलती है री!"

कल्लू नथिया का नाच देखते-देखते नींद में लुढ़क गया था। भददै उसे गोद में उठा अपनी कोठरी की ओर ले गया। सांकल चढ़ा सामने पुआल की चटाई पर उसने लड़के को कथरी उढ़ा सुला दिया। दो पहर रात बीत चुकी थी। अष्टमी का चन्द्रमा पश्चिम ओर की अमराइयों पर झुक गया था। पछुवा बयार बाधा-रहित मैदानों को पार कर, नंगे खेतों में इठलाती, पेड़ों से मरमराहट और सूखी झाड़ियों की गूंज लिये बही चली आ रही थी और बही चली जा रही थी। रात बीत जाने से हवा में खनक आ गयी थी परन्तु भददै चटाई पर उघाड़े बदन बैठा नींद की तैयारी में दिन की अन्तिम सुरती हथेली पर मल रहा था कि होंठ में दबाकर लेट जाय। छीजती चाँदनी में पीली चटाई पर उसके शरीर की कृष्ण रेखायें पीतल की पटिया पर बनी ताम्बे की मूर्ति-सी जान पड़ रही थीं।

गप्पू कहार का बोल सुनाई दिया—"भइया भददै हो! मनीजर साहब कोठी पै बुलाइन हैं!"

अप्रत्याशित बुलाहट की बात सुन भददै ने समझ पाने के लिये दृष्टि उस की ओर उठा प्रश्न किया—"हूँ, लेओ, सुरती लेओ।" सँवारी हुई सुरती की चुटकी हथेली पर गप्पू की ओर बढ़ा शेष अपने निचले होठ में दाब ली। अपना लाल लंगोट गले में लपेट, चदरा कन्धे पर रख, लाठी हाथ में ले भददै गप्पू के साथ कोठी की ओर चल दिया।

मैनेजर साहब कोठी के पूरब की ओर फैली छाव में खड़े ड्राइवर से

बात कर रहे थे। उनसे कुछ दूर, कटहल की चाँदनी में चमकती पत्तियों की छांव में बख्तावर और जगन बदन पर चदरा लपेटे काँख में लाठी की टेक लिये खड़े थे। चार कदम से ही भदई ने झुककर मैनेजर साहब को सलाम किया।

आत्मीयता के स्वर में मैनेजर साहब ने सलाम स्वीकार किया—"कहो भदई, सोवन जात रहे का? हियाँ आओ!...देखो...कितने सरकस लोग हैं... ...?" परेशानी के भाव से उन्होंने गाली दे कहा और समर्थन के लिये ड्राइवर को सम्बोधन किया, "क्यों रहमत खाँ?"

"अरे हुजूर क्या अर्ज़ करें?—ड्राइवर ने उत्तर दिया, "इतना समझाया पर जैसे 'सरकार' को कुछ गिनते ही नहीं। सरकार खुद हा ला मुँह लगाये हैं। अमा, तुम टके-टके बिकाती हो; तुम्हें मिजाज किस बात का? सरकार ने अशरफ़ी दिला दी सो दिमाग़ बिगड़ गया। कहते, रात भर ठहरो यहां। तब सुबह पसेरी भर अनाज दिला देते। कम जात लोग ऐसे ही ठीक रहते हैं।"

शरीर को ढीला कर मैनेजर साहब ने फिर भदई की ओर ध्यान दिया—'भइया भदई, 'सरकार' को तुम पर बहुत भरोसा है। कितना मानते हैं.... क्यों?"—मैनेजर ने घूमकर ड्राइवर को समर्थन के लिये संकेत किया। उसने हामी भरी, "और क्या?"

मैनेजर साहब कहते गये—"लोग ऐसी सरकसी करने लगें तो रियासत दो दिन नहीं टिक सकती। अरे हाँ, कल रियाया कहने लगे, हम 'सरकार' को कुछ गिनते ही नहीं तो यह रियासत और अमला कहां रह जायं? ...कहो!" उन्होंने ठोढ़ी उचका भदई से पूछा।

"जो हुकुम होय हुजूर, सरकार का नमक खाते हैं"—भदई ने निश्शंक उत्तर दिया।

मैनेजर साहब एक कदम और समीप सरक आये—"रहमत भी जा रहे हैं, जगन, बख्तार और गप्पू हैं। जैसे हो........"—गाली दे उन्होंने कहा, "..... साली को उठा लाओ! फिर हम देख लेंगे! समझे?"

माथा झुका भदई ने विश्वास दिलाया—"धर्मौतार, जो हुकुम!"

चन्द्रमा कुछ और झुक गया परन्तु अभी चाँदनी थी। चारों आदमी लाठियाँ कंधे पर रखे ड्राइवर के साथ तेज चाल से चल दिये। चाल की तेजी

से दम न फूल जाय इसलिये धीमे होने के लिये जगन बात करने लगा—
"'''''अरे ससुरन का बिछाय देय ! त्योरस के साल जब कमछा के बिनै ठाकुर की ऊख की पट्टी मथुरिया के नाम बदली गई, ठाकुर बहुत बिगड़े। बेचारे मथुरिया दो सौ रुपया नजराना सरकार का दियेन। जिलेदार साहब का खुश कियेन। दो रुपिया हमहूँ पायेन। बिनै ठाकुर दस बरस ते पट्टी का जोतत रहें। दो फसल और कर लें, पुरतैनी हो जाय। दोनों भइया कहन लगे— खेत नहीं छोड़ेंगे चाहे खून बह जाय ! जबरन हम लेके खेत में जा पहुँचे। जिला-दार साहब हम का कहेन—भइया जगन जा कर बिटिया देखो ! हम बिसना, बिन्धे और गप्पू का ले गये। ठाकुर हमें गरियान लगे। हम कहेन—दद्दा हमहू दो रोटी खाइत है, भ्रम न करौ !''''''''गाली का पुट दे उसने कहा—बहिन-बिटिया गरियान लागे। दोनों हाथन ते लठ लैके हम पिल परेन ! सब का बिछाइ के धर दीन। लागे पिल्ला से चिचियान ! उनके भइया 'राम' बोल गये। कहेन'''''''''''''हम रियासत के गुड़ैत''''''''

"हवल्दार साहब हमका हथकड़ी दे के थाना माँ ल गये। हम कहेन—अब जो होय ! मालिक का नमक खावा है तो उनके हुकुम से जो होय ! 'सरकार' का परताप है कि तीसरे दिन मूंछ छू उसने कहा—घर चले आयेन। बिनै ठाकुर''''''''का सबु जोर लगाते रहे। अब चाहे 'सरकार' दारोगा साहब को पाँच-सौ पूजे हों या हजार !" अपनी जान का भारी मूल्य चुकाये जाने के अभिमान में उसकी गर्दन ऊँची हो गई। जगन की बात समाप्त हुई तो ड्राइवर ने किस्सा छेड़ा—"लखनऊ में सड़क पर मज़े-मज़े जा रहे थे। साला सिपाही कहने लगा, बायें चलो ! हमने कहा—चुप बे ! साला बकने लगा। गाड़ी से उतर दो एक झाँपड़ दिया साले को। हवल्दार साहब तारे गिनने लगे।"

ये लोग कमछा के गोयड़ (पड़ोस) खेतों में पहुँचे तो गाँव के कुत्ते भोंकने लगे। जगन ने कुत्तों को गाली दी। बख्तावर ने समझाया—"बयार इधर से है। मानस-गंध पा कुत्ते चौंक रहे हैं। उधर उत्तर पीपल के परे से होकर निकल चलो।"

नाच से पहले राजा साहब के लिये विलायती की बोतल खुली थी। राजा ड्राइवर को मानते थे सो एक गिलासिया उसे भी भिजवा दी थी। चस्का लगा

तो ड्राइवर ऊपर से देसी और चढ़ा गया। वह नशे के जोम में था। बोला—"क्यों निकल चलें उधर से ? क्या दबैल हैं किसी के ? सीधे चलो जी, देखें कौन.......आता है। एक हाथ में साले का भेजा निकाल दूं !"

"अरे मालिक, झमेले से क्या फायदा ?"—खुशामद से भदई ने कहा और वे लोग पीपल का चक्कर दे निकल गये।

जोहड़ के समीप बेड़ियों के डेरे की सिरकियां चांद छिप जाने के पश्चात् धुंधली सी दिखाई पड़ रही थीं। बख्तावर के कहने से वे लोग चक्कर दे उत्तर पूरब से सिरकियों की ओर बढ़े कि कुत्ते मानस-गन्ध पा चौंकें नहीं। आहट बचाने के लिये वह लोग पंजों पर बोझ दे चल रहे थे। बख्तावर ने ड्राइवर को भी जूते उतार हाथ में ले लेने के लिये सलाह दी। उस ने गाली दे कहा.......डरते हैं क्या ?"

सिरकियां अभी कुछ क़दम दूर थीं कि एक कुत्ता गुर्रा उठा। उस गुर्राहट के साथ ही दूसरे कुत्ते ज़ोर से भौंकने लगे। पुकार सुनाई दी—"को है ?"—सिरकियों के नीचे दिखाई दिया कि एक आदमी झपट कर लेटे से उठ बैठा। भदई के कान में बख्तावर ने धीरे से कहा—"जाग गये...... झपट के लो !"

जगन कुछ झिझका परन्तु भदई और बख्तावर को झपटते देख रुका नहीं। ड्राइवर भी जूते की उलझन से ज़रा पीछे-पीछे रह गाली देता हुआ बढ़ चला।

मनसा लाठी ले खड़ा हो गया और चिल्लाने लगा—"ओ खित्तू उठ ! चोर ! चोर ! चोर !" भदई और बख्तावर ने मनसा और खित्तू को गिरा दिया होता परन्तु उसके कुत्ते आगे आकर उलझ गये। एक बड़े से काले कुत्ते ने भदई के पिंडली में दांत गड़ा दिये। बख्तावर की लाठी से कुत्ते की कमर टूट जाने पर चिल्लाने के लिये उसका मुंह खुला तो टांग छूटी। लाठियाँ कड़ाकड़ बजने लगीं। स्त्रियों के कण्ठ की आर्त चिल्लाहट भी सुनाई पड़ रही थी। नसिया और उसकी ननद भी बांस ले लड़ने को आगे बढ़ आईं। चिल्लाती भी जाती थीं—"हाय रे, मार डाला रे !" मनसा का बूढ़ा बाप कुल्हाड़ी ले आगे बढ़ आया।

भदई उछल-उछल कर पैंतरे से लाठी चला रहा था। पहले मनसा

और फिर खित्तू गिर पड़े। बूढ़ा भी दोनों हाथों से सिर थाम बैठ गया। नसिया की पीठ पर एक लाठी जमा ड्राइवर ने कहा—"यही है साली पकड़ लो...... को!"

भदई ने नसिया को गर्दन से पकड़ उसके हाथ से नाल छीन फेंक दिया। वह चिल्लाने लगी। ड्राइवर ने उसका आँचल उसके मुंह में ठूंस दिया। भदई उसे कन्धे पर उठा ले चला। वह छटपटा कर हाथ-पाव चलाती भदई का सिर और गर्दन नोंचती जा रही थी। भदई की पिंडली में लगे कुत्ते के दात लगने से लगातार खून जा रहा था परन्तु वह रुका नहीं। उस के पीछे-पीछे, गाली बकता नसिया को चुप रहने के लिये धमकाता ड्राइवर चला आ रहा था। बख्तावर के कन्धे पर भीतरी गहरी चोट बैठी थी। गप्पू और जगन के यों ही मामूली से खोंचे लगे थे। वे बख्तावर को सहारा दे लिये चले आ रहे थे।

रात को तीसरी पहर बीत चाद छिप चुका था, चादनी की शीतलता का स्थान अन्धकार की भयंकरता ने ले लिया। कोठी के बरामदे के और भी घने अंधकार म केवल मैनेजर साहब के सुलगते सिगरेट का अंगारा दिखाई दे रहा था। भदई ने अधमरी-सी, शिथिल; क्लान्त नसिया मैनेजर साहब के सामने रख कर, माथे का पसीना हाथ से पोंछ कर फर्श पर गिरा दिया। मैनेजर साहब के पुकारने से लालटेन आई। नसिया को भीतर कमरे मे पहुँचा मुँह का कपड़ा निकाल दिया गया।

नाच के बाद नसिया को न पा राजा साहब का मन असफलता के अपमान की अनुभूति से चुटिया गया था। व्यर्थता और उदासी अनुभव होने लगी। ग्लानि दूर करने के लिये थोड़ी और लेने की सलाह मैनेजर ने दी। उसी क्षोभ में राजासाहब ने गाली देकर कहा था—"........को पकड़ लाओ।"

नसिया के आने तक वे आवेश और उन्माद में सोफे से कुर्सी और कुर्सी से पलंग पर उछलते रहे। जिस समय नुची-खुची, मसली नसिया उन के सामने पेश की गई, आवेश का ज्वार फिर ग्लानि की दल-दल में परिखित हो चुका था। राजा साहब ने गाली दे कर उस से पूछा—"क्या मिजाज है?"

उस अवस्था में भी बदहवास नसिया ने गाली का उत्तर गाली से दे छूने वाले का कलेजा चीर, खून पी जाने की धमकी दी। राजा साहब के क्रोध

की निस्तेज होती अग्नि पर पेट्रोल पड़ गया—"अभी इस··· हरामजादी को हमारे सामने कुत्तों से·······! बुलाओ साले जगन को ! रहमत को भी बुलाओ अभी यहीं हमारे सामने·······!·······ऐसे मिजाज हैं!··· ···" वे चिल्ला कर दांत किटकिटाने लगे।

जगन और रहमान के आने पर राजा साहब ने नसिया को मजा चखाने के लिए दोनों को एक-एक बोतल देसी शराब देने का हुकुम दिया। हाफती हुई नसिया को दोनों बांहों से थाम वे लोग खींच ले गये।

× × ×

खिच्चू और उस का बूढ़ा बाप रोते हुये खिलतिया के थाने में पहुँचे। अपने आदमी को ज़ख़मी कर उस की औरत भगा ले जाने की दुहाई उन्होंने थानेदार साहब के आगे दी। भाग्य से सरकिल इंस्पेक्टर साहब अकस्मात-निरीक्षण (Surprise Visit) के लिये उसी दिन तड़के ही आ विराजमान हुये थे।

हवल्दार साहब ने फरियादियों को डपट कर थाने के बाहर प्रतीक्षा करने के लिये कह दिया था। वे अपने यहा की परिस्थिति जानते थे। रियासत के लिये लिहाज था। सरकिल साहब से छुट्टी पा दारोगा साहब जो मुनासिब समझते, करते। सरकिल साहब ने खबर पा, फरियादियों को भीतर बुलाये जाने का हुक्म दिया। संगीन मामले में हवल्दार की उपेक्षा ने उन के मन में सन्देह उत्पन्न किया। मामले की तहकीकात के लिये वे दारोगा के साथ स्वयं घटनास्थल पर आये। इस के बाद भोजन और विश्राम के लिये थाने पर लौटे बिना, सीधे जमींदार साहब की कोठी पर पहुँचे।

जिस समय सरकिल साहब घटनास्थल पर तहकीकात कर रहे थे, हनै उन के आकस्मात पधार जाने का समाचार राजा साहब की कोठी पर पहुँच गया। कोठी पर नसिया का कुछ पता न चला। तिस पर भी सरकिल साहब ने भदई और बखतावर को उन की चोटों के प्रमाण के आधार पर, उन के घटना से सम्बन्धित होने के सन्देह में, हिरासत में ले लिया। जगन और नसिया दोनों का ही कुछ पता न चला।

मनसा को चोट गहरी लगी थी। वह उसी दिन संध्या तक दम तोड़

गया। सर्कल साहब के हुक्म से उस की लाश जिला हस्पताल में सिविल-सर्जन के निरीक्षण के लिये भेज दी गई। आगे तहकीकात और रिपोर्ट की हिदायत कर सर्कल साहब दौरे पर चल दिये।

दो महीने तक नसिया की खोज होती रही। अदालत ने पुलिस को खोज के लिये अवसर (Remand) दिया। मदई और बख्तावर जिला जेल की हवालात में सड़ते रहे। मनसा के बूढ़े बाप, भाई और ननद को हर तीसरे दिन थाने में हाजिर होने का हुक्म हो जाता। उन का आदमी मारा गया, घर की औरत छिन गई सो तो हुआ लेकिन हर तीसरे दिन थाने में दिन भर की हाजिरी में वे रोजी से भी गये। अपने ऊपर हुये अत्याचार का बदला ले पाने की प्रतिहिंसा के बदले वे अपनी जान बचा पाने के लिये व्याकुल होने लगे।

दारोगा साहब प्रायः कोठी पर आते-जाते और उन की खातिर होती। मामले के बारे में राजा साहब को चिन्तित देख वे आश्वासन देते, इंशाअल्ला सब ठीक हो जायेगा। आप का नमक गुलाम की नस-नस में भीज रहा है, आप को फिक्र किस बात की है?'

दो मास से अधिक समय खोज पड़ताल के लिये देना अदालत ने स्वीकार न किया। आखिर मामला अदालत में पेश हुआ तो इस रूप में:—

मरहूम मनसा की औरत 'मफरूर नसिया' रियासत के नौकर जगन से फंसी थी। मनसा औरत पर कड़ी चौकसी रखता था। जिस रात राजा साहब के नौकरों ने नसिया का नाच कराया, जगन अपने दोस्तों को ले रात के तीसरे पहर नसिया को जबरन लिवा लाने के लिये गया। तरफैन में मार-पीट हुई और नसिया जगन के साथ भाग गई।

राजा साहब की प्रजापालकता के कारण अभियुक्तों के लिये सफ़ाई के वकील खड़े किये गये। मनसा के बाप और भाई के पास वकील खड़ा करने के लिये रकम और हौंसला न था। वे किसी तरह रोज़-रोज़ के सम्मनों से जान बचाना चाहते थे। वे अदालत में—"हां हुजूर" कह चुप हो गये।

अभियुक्तों के पहचाने जाने का अवसर आया तो दूसरे लोगों में मिलाकर खड़े किये गये बख्तावर को फरियादी पहचान नहीं पाये। मदई के लिये

उसमें जग जाने, सुडौल डील और पिंडली में लगे कुत्ते के दांत ने उस पर अपराध में भाग लेने की मोहर लगा दी।

सिविल सर्जन साहब की रिपोर्ट थी कि मनसा की मृत्यु लाठियों की चोट से ही हुई थी। जज साहब की दृष्टि में आक्रमणकारी भयंकर अत्याचारी और आततायी प्रमाणित हुये, जो कत्ल कर के दूसरे आदमी की औरत को भगाने के लिये गये थे। फरार हो गये अभियुक्त जगन के अपराध का दण्ड भी शायद उन्होंने गिरफ्तार हो जाने वाले अपराधियों को ही देना उचित समझा। जज साहब को असंतोष था कि पुलिस ने गवाही पहुँचने और खोज में उतनी तत्परता से काम नहीं लिया जितना कि ऐसे संगीन मामले में उचित था। परन्तु अपराध प्रमाणित हो जाने में सन्देह न था। सन्देह रह गया था केवल बख्तावर के व्यक्तित्व के विषय में, उसे फरियादी गवाह पहचान नहीं पाये। इस सन्देह की छुरी ने बख्तावर के गले में पड़े न्याय की फांसी के फन्दे को काट दिया। वह सर्वथा मुक्त हो गया। भदई के लिये केवल एक ही दण्ड था—फांसी !

× × ×

भदई जिला जेल की फांसी की कोठरी में बन्द था। एक दिन मैनेजर साहब उसे दर्शन देने आये। भदई की प्राण-रक्षा के लिये राजा साहब की चिन्ता का आश्वासन दिलाया और विश्वास दिलाया—"हजार, लाख जो भी खर्च हो जाय हाईकोर्ट में मुकदमा लड़ कर उसे छुड़ाने में कसर न छोड़ी जायगी।"

भदई जेल की रूखी-सूखी, कच्ची-जली खाकर भी अपनी कसरत पूरी कर लेता और दिन रात राम-नाम जपता और राम-नाम के गीत गाता। उसके मन में पश्चात्ताप की कलख न थी। उसने कौन पाप किया था जिसके लिये दुखी होता ? पराई औरत की ओर कभी बदनिगाह नहीं की। पराये सोने को सदा मिट्टी समझा। मालिक का नमक खाया तो उसे हलाल किया। दुनिया नहीं देखती तो न देखे, राम जी तो सब देखते हैं। उसे चिन्ता थी केवल अपने बिना मां के बेटे को। वह क्या और कैसे खाता, ओढ़ता होगा ? परन्तु विश्वास भी था—राम जी सब देखते हैं। पत्थर में बन्द जीव की भी जो चिन्ता करते हैं ; वे क्या अपने सेवक के बेटे की सुध न लेंगे।

सेशन जज ने फैसला लिखने में कुछ ऐसा जहर भर दिया था कि हाई-कोर्ट में भदई की ओर से की गई प्राण-भिक्षा (अपील) उस के अपराध की गुरुता के कारण ठुकरा दी गयी ।

× × ×

जेलर ने भदई को समाचार दिया—"तुम्हारी अपील मंजूर नहीं हुई ।"

"जो राम जी की इच्छा"—भदई ने उत्तर दिया ।

उस से पूछा गया—"किसी को मिलना चाहते हो ?" उसने अपने पुत्र को देखने की इच्छा प्रकट की ।

स्तब्ध और त्रस्त बालक को सींखचों में बन्द पिता के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया गया । वह पिता के वात्सल्यमय हाथों के स्पर्श से दूर था परन्तु पिता की दृष्टि बालक के उगते कोमल अंगों का स्पर्श कर रही थी ।

लल्लू रो पड़ा । भदई की आंखों से भी आंसू टपक पड़े । अपने को सम्भाल कर उसने कहा—"लल्लू रोते नहीं·····मर्द बच्चे कहीं रोते हैं······? जियो बेटा·······! राजा साहब का हाथ तुम्हारे सिर पर है । राम जी उन्हें चिरंजीव करें । बेटा, राजा साहब के चरणों में रहना । जिस का खाओ उस का हलाल करना । यही सब से बड़ा धर्म है । मालिक को जानो । नमक हलाल करो । जाओ बेटा········सुखी रहो !



पुनिया की होली

पुनिया डाक्खाने के बड़े बाबू जी के यहां बच्चा खिलाने पर है। सुबह मुंह-अंधेरे जा वह नाश्ता तैयार करने में मदद करती है। साहब का दफ्तर जल्दी जाना होता है। कहने को दस बजे जाते हैं, पर पुराने जमाने के नौ ही समझिये। और फिर जाड़े के दिन। रात साढ़े-आठ, नौ से पहले मुन्ना सोता नहीं; उससे पहले पुनिया घर कैसे लौटे?

दिन में एक डेढ़ घंटे की छुट्टी उसे बहू जी देती हैं कि अपने घर रोटी सेंक, बच्चों को खिला-पिला आये। डेढ़ के बजाय वह तीन, कभी चार घण्टे लगा जैसे-तैसे दिन का काम समेट पाती है। तब मुंह में चुटकी भर तम्बाकू दबाये, गली-मुहल्ले के लोगों से बतियाती, धीरे-धीरे वह लौटती है। बहू जी नाराज तो होती ही हैं। रोज ही चुड़ैल को निकाल देने की धमकी देती हैं परन्तु पुनिया जानती है, सब ऐसे ही चलता है। बहू जी न लड़के को सम्भाल पायेंगी, न उसे निकाल सकेंगी। वह कुछ मुंह लगी भी है। बड़े आदमियों की सेवा करना उसके यहां का पुश्तैनी पेशा है। बात करने का सलीका है। बड़े आदमियों का रंग पहचानती है। मुन्नू को वह पल भर को छोड़ देगी। वह दौड़ कर मां से धमा-चौकड़ी करने लगेगा। बहू जी डाटेंगी—"तू लड़के को एक मिनट नहीं सम्भाल सकती, मर गई। मुझे दो मिनट काम नहीं करने देगी? यह धोबी की धुलाई पहाड़-सी पड़ी है, इसे कौन सहेजेगा?"

आखें फैला, पतली कमर को जरा हिला, पुनिया कहेगी—"हाय-हाय, कैसी हैं; पहर भर बाहर खेल लड़का पल भर को पास आया कि लगीं डांटने

उसे ! जरा सिर पर हाथ नहीं फेर देंगी। बच्चे का जी छोटा हो जाता है ! इन्हें तो अपने काम से ही फुरसत नहीं।" धोबी की धुलाई के सफेद टीलों के बीच बैठी बहू जी मुन्ना की धमा-चौकड़ी पर रीझने लगीं और पुनिया आधे घण्टे को फिर गायब।

बहू जी ने फिर निकाल बाहर करने की धमकी दी और दिखाने को, पुनिया के रंग उड़ गये। फ्राक मुन्ना के सामने डाल, आंखें घुमा, इतरा कर बोली—"मुन्ना कह दो, हम नहीं पहिनेंगे यह सब पुराने कपड़े ! घर में रोज सैकड़ों खर्च हो जायंगे। एक बच्चा है, उसके लिये कपड़े नहीं !" और जब बहुत तनातनी हो जायगी, तो वह बहू जी की आड़ कर कह देगी, "तो क्या है, निकाल दो ! भूखे-बिलखते बच्चों को यहीं डाल जाऊंगी, मेरा क्या है ····?" कम उम्र है न ? इस से गली मुहल्ले की रहस-वार्ता समीप बैठ, दबी जुबान में करती है और दूर के सहेलपने का दावा भी है।

रंग सांवला है जरूर, पर चेहरे पर चिकनाई है। बहू जी मौके-बेमौके उस के मैले रहने पर फटकार कर अपनी धुली धोती, पेटीकोट और जम्पर दे देती हैं। अपने मुहल्ले में लौटते समय कई ओर से मसखरियां, बोली-ठोली और टुचकारे उसे सुनने पड़ते हैं। किसी पर आंखें दिखाती, किसी पर ओंठ दबाती, बल खाती वह घर पहुँचती है।

घर क्या ? कोठरी है। कोठरी भी ढङ्ग की नहीं, जैसे घरौंदा हो। जैसे घर को झाड़-बुहार कर कूड़ा बाहर फेंक दिया जाता है, वैसे ही सम्पन्न नागरिक समाज की झाड़न-बुहारन भी मुहल्लों और शहरों के बाहर फेंक दी जाती है। इन्हें 'स्लम्स' कहते हैं। इन स्लम्स में रहने वाले भी सभ्य मनुष्य-समाज की दृष्टि में फल से उतार दिये गये छिलके की भांति बेकद्र होते हैं। अपनी इस कोठरी तक पहुँचते-पहुँचते पुनिया की सरसता और मुस्कराहट समाप्त हो जाती है। उस की छः बरस की लड़की धूल से भरी जटायें फैलाये, कन्धों पर एक बेबटन का झगुला लटकाये उसे देखते ही पुकार बैठती है—'अम्मा, भूख !' और उस का चार बरस का लड़का झगुले के बजाय बेबटन की फतुही पहने, बहती नाक को ऊपर खींचता हुआ, बहिन से पहले खाना पाने के लिये दौड़ कर मां का आंचल थाम, बार-बार 'रोटी-रोटी दे ?' चिल्लाने लगता है।

घर के भीतर सवा बरस की दूसरी लड़की है, जमीन पर घिसटती हुई।

इतना समय पुनिया के घर से बाहर रहने में वह उस के आने तक दो-चार जगह सफाई करने की आवश्यकता पैदा कर देती है। पुनिया क्या जानती नहीं, सफाई किसे कहते हैं ? साहब के कमरे में फर्श की दरी पर अगर कोई तिनका या धागा पड़ा हो तो वह उठा देती है। और अगर उन के छः जोड़े जूतों में से किसी एक पर धूल पड़ी हो, तो बहू जी को सुना कर पहाड़ी नौकर गुमान को सफाई का कायदा न जानने के लिये डांट देती है। मुन्ना को वह बेबी सोप छोड़ दूसरा साबुन नहीं लगा सकती। अगर कभी गुमान जल्दी में उसे सनलाइट की टिकिया थमा दे तो उस के माथे पर बल पड़ जाते हैं। मुन्ना की ऊनी जुराब में एक छेद हो जाय, तो वह बहू जी को सुना देती—"हा, मुन्ना की जुराब फट रही है, हम नहीं जानते। ऐसी सर्दी पड़ रही है। आप को तो जरा फिकर ही नहीं, हा !"

मुन्ना के बदन पर पफ़ के बिना पाउडर लगाना उसे अच्छा नहीं लगता। 'जानसन' के पाउडर की जगह अगर 'कस्सन' का पाउडर आ जाय, तो त्योरी चढ़ा कर कह देती है—"हा, सब कंजूसी मुन्ना के लिये ही तो है।" सन्तरा चाहे बाजार में चवन्नी का एक मिले। वह ऊंचे स्वर में सुना देती है, बच्चे को फल नहीं मिलेगा तो कब्ज नहीं हो जायगा। और उस के अपने बच्चे बदन पर धूल लपेटते हैं। वह उन्हें नहला नहीं पाती। दो घड़ी को घर आती है, तो दो रोटी सेंक उन के पेट में डाले कि नहलाने बैठे ?

उस का मर्द या तो चारपाई पर पड़ा कराहता रहता है या कोठरी के बाहर दीवार के सहारे बने चौतरे पर दीवार से पीठ सटाये पुनिया के आने की प्रतीक्षा में चिलम पीकर खांसता रहता है। बाबू साहब के यहां से लौट, बड़बड़ाती हुई पुनिया बच्चे को सुलाने और जगह साफ करने में लग जाती है। धनकू को सुना कर वह अपनी किस्मत से लड़ती है—"इतना तो नहीं होता कि बच्चों को ही संभाल लें। दिन भर झाड़ तोड़ते हैं और घर आये कि चूल्हा ठण्डा, न घर में उजेरा।"

धनकू अंटी में से दियासलाई का बक्स निकाल उसकी ओर फेंक देता है कि मिट्टी के तेल की ढिबरी जला दे। आजकल के जमाने में एक पैसे का तेल मुश्किल से दो दिन चलता है इसलिये कोठरी में प्रायः अंधेरा रहता है। धनकू सोचता है, मिट्टी के तेल की दूकान पर घण्टों खड़ा रह कर पैसे का तेल ला,

उसे फूंक देने से क्या फायदा ? उस से तो अच्छा उस पैसे का तम्बाखु लाकर दो दिन काट सकता है पर पुनिया नहीं मानती, ऊंचे स्वर में चिल्लाने लगती है—"इसे तम्बाकू की पड़ी है । अंधेरे मे बच्चे डरते हैं, सो नहीं सूझता !" धनकू का मन ग्लानि से भर जाता है । सवा बरस से आतशिक के जोर के कारण उस के हाथ पैर नहीं चलते ! इससे जोरू की बात उसे यों सुननी पड़ती है । दस रुपया महीना क्या कमा लाती है, जैसे मर्द को खरीद लिया है ! मुंह जोर ऐसी ही रही है कि बात-बात पर लड़ती है । धनकू के लिये जब अपनी मर्दानगी का अपमान सहना असम्भव हो जाता है, तब वह थप्पड़ से, लात-घूंसे से अधिकार को स्थापित करने की चेष्टा करता है । उस समय बच्चे रो पड़ते हैं ; पुनिया मार की पीड़ा से और मन के दुख से खूब चीख-चीख कर रोती है ; अपने मर जाने की प्रार्थना दैव से करती है और साथ ही धनकू को सड़-सड़ कर मर जाने का श्राप भी देती जाती है । अपने सभी प्रकार से असन्तुष्ट जीवन मे अपनी मर्दानगी के प्रभाव से रोती हुई पुनिया को देख, धनकू को कुछ तो संतोष होता है, आखिर तो वह इस स्त्री का मर्द है, मालिक है ; संसार में उसके पास और कुछ न सही, एक औरत तो है ! उसके पांव जब बुरी तरह पिराने लगते हैं तो बनिये की दूकान से धेले का तेल पैसे में उधार लाकर उसे गरम कर पुनिया से आधी रात तक मालिश करवा सकता है ।

पुनिया दस रुपया महीना पाती है सही परन्तु अढ़ाई रुपया हर महीने आगा ले जाता है । उस से पिछले जाड़ों में पुनिया ने पांच रुपये लिये थे । उस से पहले भी रुपया-दो मौके-मौके लेती रही थी । सूद मिला कर वे बीस हो गये । असल न सही, सूद तो आगा हर महीने लेगा ही । ऐसे ही बनिये का कितना देना हो गया था ! उसने पुनिया की चांदी की तमाम चीज-बस्त रखा ली । अब पांव की अंगुलियों में गिलट के बिछुए भर रह गये हैं । उसके बाप ने कानों में चादी के भारी-भारी करनफूल बनवा कर दिये थे पर वे तो काशी के बनिये के यहा पड़े थे । सूद बढ़ते-बढ़ते जब छुड़ाने की उम्मीद न रही तो पुनिया ने वे दे ही डाले । अब कानों में वह कागज का डाट बना कर लगाये रहती है कि छेद बन्द न हो जायं । कभी तो कोई चीज कान के लिये वह बनवा ही पायेगी । अभी तो वह जवान है ।

पुनिया के बच्चे भूखे रहते हैं, पर वह क्या करे ? अपने मन को वह समझा लेती है । धनकू के लिये वह क्या करे ? जो कुछ खुद पाती है, उसे

भी देती है। परन्तु बच्चों को वह कैसे समझाये। उन का भूख से ठुनकना उस से देखा नहीं जाता। दोपहर मे या रात में घर लौटते समय कोई पूरी-पराठा या सब्जी-तरकारी मौके से हाथ में लिये चली आती है कि बच्चा को हो जायगा, उसके अपने लिये पैसे का चबेना बहुत और कभी-कभी वह भी नहीं। बच्चो के लिये रोटी भी सेंक देती है तो 'मरे' नमक या गुड़ के लिये जिद्द करने लगते हैं। इसी से पुनिया घर लौटने से पहले दो कंकड़ी नमक या मौके से छटांक-आधी छटांक चीनी पुड़िया मे ले लेती है। कोई चोरी के ख्याल से नहीं; ऐसे ही बच्चो को बहलाने के लिये। उन मरों का जी भी तो सभी कुछ खाने को करता है। और फिर इतना-सी चीनी का क्या है? चार आदमी चाय पीते है, तो इतनी तो प्याला मे रह जाता है लेकिन बहू जी यह सब ताड़ती न हो सो बात नहीं? पर बेशर्म से क्या कहे? उसकी नीयत ही ऐसी है।

हर महीने वह बहू जी से दो-अढ़ाई पेशगी लेती है। वैसे पांच उधार के भी हो गये हैं। बहू जी हर महीने कह देती हैं, अब पेशगी कौड़ी नहीं दूंगी और पिछला काटूंगी; परन्तु समय आने पर वह प्रतिज्ञा नहीं ठहरती। ऐसे ही वह मार्च की पन्द्रह तारीख को हाथ जोड़ फिर दो रुपये पेशगी ले गई। वे पांच ही दिन में उड़ गये। अब फिर ज़रूरत थी करती क्या, बरस-दिन का फगुई का त्योहार था। जब धनकू दूसरों के दरवाज़े बैठ कर कुल्हड़ भर पी आता है, वह खुद दूसरो के यहा ज्योनार में जाती है, तो अपना मुंह कहाँ छिपा ले। उन्नीस तारीख को फिर उसने बहू जी की खुशामद कर अठन्नी और ली, पर वह भी उड़ गई।

पुनिया के घर में अनाज के नाम पर दाना नहीं और दोनों बच्चे होली पर पूड़ी खाने की रट लगाये थे। हाते में घर-घर से तेल के पकवान बनने की महक उठ रही थी तो उसके बच्चे ही क्या करते? उन 'मरों' का भी तो जी है। बहू जी से वह कुछ मांगे, तो किस मुंह से? नहीं तो फिर करे क्या? धनकू पिछली रात, दो रुपये पेशगी लाने के लिये उससे लड़ता रहा।

× × ×

मुन्ना के बीसों खिलौने थे। टूटने से पहले नये आ जाते। जगह-जगह पैरो में दब जाते थे, इस से बहू जी ने एक आलमारी में भरवा दिये थे।

खिलनों के साथ ही मामा के दिये चादी के छोटे-छोटे कटोरी-गिलास भी थे। उन्हे पटक-पटक मुन्ना ने बेकाम कर दिया था। वे भी उसी आलमारी में पड़े थे। बहू जी का ख्याल था, ज़रा सयाना हो जाय, नये सिरे से उसके लिये कुछ बनवा देंगे! पुनिया रोज़ ही उन चीज़ों को देखती थी, पर कभी उसे कुछ ख्याल न आया। बनी हो तो, बिगड़ी हो तो, जिसकी माया है उसी की है। और मुन्ना की चीज पर वह कैसे नीयत डिगा सकती थी? पर उस दिन उस मुसीबत में मन उसका हाथ में न रहा। चाँदी का एक बड़ा-सा झुनझुना था जिस में चादी की जंजीर लगी थी। पुनिया ने सोचा, कम से कम तो होगी पाच रुपये भर। रामजस के यहा तीन रुपये में रखा दे! पहली तारीख को महीना मिलते ही छुड़ा लेगी और जहां की तहां लाकर रख देगी। किसी को पता भी न चलेगा! किस्मत ने चक्कर दिया कि पुनिया ने जंजीर अंटी में खोस ली।

रात चलते समय उसने गिड़गिड़ा कर कहा—"बहू जी कल बरस-दिन का त्योहार है, एक दिन की छुट्टी लेंगे। अगले दिन काम की अधिकता का अनुमान कर बहू जी ने बिगड़ कर कहा—"और क्या, जिस दिन काम का बोझ आ पड़ेगा, उसी दिन तो छुट्टी चाहिये!" पुनिया जिद्द कर रही थी, उन्हें मानना पड़ा।

किस्मत की बात! अगले दिन सुबह ही मुन्ना ने अपनी लकड़ी की बिल्ली पटक-पटक कर तोड़ दी। दूसरा खिलौना उसके लिये निकालने को बहू जी ने आलमारी खोली, तो चादी के कुटे-पिटे बेडौल बरतनों की ओर ध्यान गया; उन्हें गिनने लगीं। देखा तो झुनझुने की जंजीर गायब! उन्होंने गुमान से पूछा। पुनिया पर उन्हे एतबार था। खाने-पीने की छोटी-मोटी चीज होती तो एक बात थी। पर रुपये पैसे और ज़ेवर के मामले में पुनिया का हाथ सच्चा था। बीसों बेर आलस्यवश ज़ेवर और रुपये छोटी तिजोरी में रखने के लिये उन्होंने पुनिया को दिये थे और कभी कोई बात नहीं हुई। बहू जी ने गुमान से पूछा तो वह साफ कसम खा गया। बहू जी ने डांटा—"तो क्या फिर जंजीर को आलमारी निगल गई? मैं कुछ नहीं जानती! अभी निकाल कर दो नहीं तो पुलिस के हाथ पकड़वा दूंगी!"

गुमान को गुस्सा आ गया। एक तो वह 'पहाड़ी ठाकुर' ठहरा, दूसरे उसने चोरी की नहीं थी। अलबत्ता पुनिया को बीस दफ़े छोटी-बड़ी चीज़

की चोरी करते उसने देखा था। वह लपकता हुआ घर से बाहर चला गया। पास की पुलिस की चौकी में था उसके गांव का सिपाही सुजानसिंह। गुमान ने सुजानसिंह के सामने अपनी व्यथा रो कर सुनाई और उस के साथ दूसरे सिपाही को ले पहुँच गया पुनिया के घर।

रात बाबू जी के यहाँ से आते ही धनकू ने पूछा था—"कुछ लाई ?" पुनिया ने उत्तर दिया, "लाती कहाँ से ? मेरा कुछ गड़ा रखा है वहा !" दोनों में बहुत रात गये तक झगड़ा होता रहा।

पुनिया ने सोच लिया था, जंजीर धनकू के हाथ नहीं देगी। वह मुआ उसे कहीं बेच डाले, तो पाच से कम क्या मिलेंगे। और कहीं गिरवी रखेगा, तो भी तीन-चार से कम नहीं लेगा। जंजीर उसकी अपनी थोड़े ही है ? वह रामजस से केवल दो लेगी और पहली दूसरी तारीख को बहू जी से महीना मिलते ही छुड़ाकर फिर जहाँ की तहा धर देगी। जिसकी चीज़ है उसी की रहे, उसे क्या लेना है।

बरस-दिन का पर्व था सुबह उठते ही धनकू फिर उसे बाबू जी के यहा जाकर कुछ माग लाने के लिये विवश कर रहा था। वह उस की बात अनसुनी कर झाड़ने बुहारने में लगी। बच्चों ने उठते ही रंग और पूड़ी के लिये जिद्द शुरू की। उन्हे वह समझा रही थी—'अरे.........दिन तो निकल लेने दो !' वह सोचती थी, अभी थोड़ी देर में रामजस के यहां जायगी।

इतने मे आ गया गुमान दो सिपाही लिये।

धनकू कुछ समझ न सका। पुनिया ने समझा तो परन्तु उसे विश्वास न आया कि बहू जी ऐसा कर सकती हैं। गुमान ने कहा—"वह जंजीर कहाँ है ?"

"कैसी जंजीर ?"—साहस कर आँखें दिखा पुनिया ने कहा, "हम क्या जाने कैसी जंजीर ? हम क्या चोर हैं ? हमेशा से हम तो बड़े आदमियो के यहा काम करते आये हैं।.........कोई चोर हैं क्या हम ?.........बड़े आये।"

पुलिस वाले की शह पर गुमान ने खुद ही कोठरी की तलाशी लेनी आरम्भ की। चीथड़े पलट डाले। इधर देखा, उधर टटोला, खपरैल में खोंस हुई एक पुड़िया उसने खींच ली और पुनिया चीख़ पड़ी।

सिपाही पुनिया को चौकी चलने को कह रहे थे और वह उनके पांवों में लिपट-लिपट कह रही थी—"सिपाही जी, यह जंजीर हमें बहू जी ने खुद दी है; चल के पूछ लीजिये !"

घनकू कांपता हुआ एक ओर चुप खड़ा था। सारे अहाते के लोग चारों ओर गोल बांधे भयभीत आंखों से तमाशा देख रहे थे। सब यत्न कर पुनिया हार गई। बरस-दिन के त्योहार के दिन सिपाही उसे थाने लिये जा रहे थे। बच्चे उसके चीख रहे थे।

लोग कह रहे थे, बुरी नीयत का यही फल होता है। कोने का हलवाई कह रहा था, साली का मिजाज नहीं मिलता था ? असल बात तो यह थी"""। आते-जाते उसने पुनिया को कई दफे कहा था—"देखो, दही-रबड़ी खाओ तो ले जाया करो !"

आँखें चढ़ा पुनिया ने उत्तर दिया था—"देखो लाला, हम बाबूजी से कह देंगे, हाँ"""।"

"तो हम कुछ कहते हैं ?"—उत्तर दे लाला चुप रह गये थे।

कोने के पनवाड़ी ने रोती हुई पुनिया को सिपाहियों के साथ जाते देखा तो सोचा—रही हरामजादी ज़रूर बदमास। कै बेर पत्ती मांग मांग के ले गई। और जब उसने पूछा—"तो कहो फिर क्या हाल है"""?" तो झमक कर निकल गई, 'ठाकुर तुम तो बड़े वैसे हो।" और अब चोरी में पकड़ी गई न ? किसी को कुछ गिनती थोड़े थी। हराम का खाने वालों की यही बात होती है।

× × ×

घर लौट गुमान ने अभिमान से सब बात कह सुनाई। बहूजी कांप उठीं। चिल्लाकर उन्होंने कहा—"मरा तू ऐसा लाट साहब हो गया ! किसने कहा था तुझे यह पंचायत करने को ? जंजीर चली गई थी तो तुझे क्या ? तेरा क्या गया था ? बड़ा सिपाही बनता है।"

आँखों में आँसू लिये वे बाबूजी के पास पहुँचीं। बालों और मुँह पर रंग मले वे भूत बने थे। सुनकर घबरा गये। बोले—"तो फिर ?"

रोकर बहूजी ने कहा—"हाँ फिर क्या, जल्दी जाते क्यों नहीं थाने ?

बरस-दिन के पर्व के दिन उनके बच्चे बिलखते होंगे। कैसी हाय पड़ेगी·······थाने जाकर कह दो, जंजीर उसे हमीं ने दी थी।"

बाबूजी डाकखाने में बड़े बाबू हैं सही पर पुलिस के नाम से तो डर लगता ही है। बीबूजी की बात भी कैसे टालते·······? तिस पर ग़रीब की हाय का डर। जल्दी-जल्दी मुँह धोया, हजामत बनाई और साफ़ कपड़े पहिन, गुमान को साथ ले चौकी पहुँचे। वहाँ पुनिया एक तरफ़ बैठी लम्बी साँसें ले रही थी और सिपाही ढोलक बजाकर गा रहे थे—"फागुन में चलत फगुई बयार······· ।"

बाबूजी ने हवलदार साहब को समझाया।

पुनिया जंजीर लिये घर पहुँची तो विस्मय से देखते लोगों की ओर पीठ किये अभिमान से कह रही थी—"लो, देख लिया।"

बहूजी की नाराज़गी की हद नहीं थी। उन्होंने कहा—"नमकहराम है, चोर है, बदमाश है और उसे कभी घर में रखेंगे नहीं।" पुनिया कुछ बोलती ही नहीं। मुन्ना को खूब बना सँवार कर, गोद ले बाहर जा बैठती है।

अहाते के लोग समझते न हों सो बात नहीं। जब पुनिया कोने पर से गुजरती है, हलवाई और पनवाड़ी आपस में बोली देते हैं—"हां भाई, बड़े-बड़े बाबू! हम जैसों को कौन पूछता है?"



हवाखोर

शरीर के भीतरी भागों में जो घाव पैदा हो जाते हैं, एक्सरे से उन की जाँच-पड़ताल कर इलाज की व्यवस्था की जाती है। ज़िन्दगी में कुछ घाव ऐसे भी लगते हैं जिन्हें छिपाना ही पड़ता है। इन घावों का इलाज, सहने का अभ्यास ही है!

समाज के अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति एकांत खोजने लगता है। समाज से दूर भाग कर वह समय की शरण लेना चाहता है। समय का मरहम ही उसके घावों को भरकर उन पर अंकुर ला सकता है। उसे एकान्त ही अच्छा लगने लगता है। केवल असामाजिक बनकर ही वह समाज से अपना असहयोग और मूक असंतोष प्रकट कर सकता है।

वह घटना घटी थी नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में। दिसम्बर की चौबीस तारीख से यूनिवर्सिटी बड़े दिन की छुट्टियों में, मुहर्रम वग़ैरह मिलाकर, जनवरी के पहले सप्ताह तक के लिए बन्द हो गयी। नारायण यूनिवर्सिटी में लेक्चरार है। यौवन की पहली अवस्था में उत्तरदायित्व की उपेक्षा उमङ्ग का ही ज़ोर रहता है। नारायण को भी प्रति मास वेतन के रूप में मिलने वाले रुपयों की अपेक्षा अनेक छुट्टियों का ही महत्व अधिक जान पड़ता है।

लोगों की मर्मभेदी दृष्टि से अपने ज़ख्मी हृदय को बचाने के लिए उसने किसी तरह कराहते हुए एक मास बिताया था। छुट्टियाँ होते ही वह जाड़े के उजड़े नैनीताल में एकान्त ढूंढ़ने चल दिया।

पृथ्वी के साधारण धरातल से हज़ारों फुट ऊँचे उठे पहाड़ों की असाधारण, उत्तेजक और स्फूर्तिदायक वायु और प्रकृति के अगणित प्रहारों के बावजूद अडिग और उत्तुंग बने रहने वाले शिखरों ने उसे समझाया—प्रहार सहकर संसार में सीधे खड़े रहना ही मनुष्यत्व है।

मानसिक परिवर्तन आ जाने पर उसने शिथिल होते जाते जीवन को संभालने की चिन्ता आरम्भ की। गिरता स्वास्थ्य सुधारने का निश्चय किया। पहाड़ की प्राण-पोषक वायु में नियमित भोजन, स्वाध्याय और व्यायाम, प्रातःकाल दूर तक पहाड़ पर चढ़ना और सन्ध्या समय किराये का घोड़ा ले झील के चारों ओर चक्कर लगाना।

गोविन्द अपने घोड़े पर जीन-साज कसे मल्लीताल पर ग्राहकों की प्रतीक्षा में धूप सेंका करता था। घोड़े के सामने थोड़ी घास डाल देता या ग्राहक के न आने पर घोड़े की मलाई-दलाई करने लगता। घोड़ा चढ़ती उम्र का था। खाने को पर्याप्त मिलता और परिश्रम साधारण। पुट्ठे भरे हुए थे। लाल-बादामी रङ्ग के रोयें पालिश से सुनहरी झलक मारने लगते। घोड़े का रूप-रङ्ग और उठान सहज ही शौकीन ग्राहकों को खींच लेती। गोविन्द सवार के पीछे-पीछे भागता चलता। घोड़े वाले प्रायः चढ़ाई पर स्वयं थकान से बचने के लिये घोड़े की पूंछ का सहारा लिये रहते हैं। गोविन्द घोड़े को थकान से बचाने के लिये चढ़ाई में घोड़े की पूछ पकड़ स्वयम सहारा नहीं लेता। घोड़े की ममता अपनी थकान से प्रबल थी·······वह जीवन का अवलम्ब था।

नारायण सवार नहीं था। सवारी सीखना चाहता था। गोविन्द के घोड़े ने उसे आकर्षित किया। प्रति सन्ध्या सवारी के लिये उसे नियत कर लिया। गोविन्द सांझ को पाच बजे नारायण के लिये घोड़ा हिमालय होटल में ले आता।

दूसरे मरियल घोड़ों के मुकाबिले में गोबिन्द के घोड़े की तारीफ न करना असम्भव था। नारायण ने भी उसे सराहा। सन्तोष और अभिमान से गद्गद् स्वर में, घोड़े के नरम नथनों पर हाथ फेर कर गोबिन्द ने उत्तर दिया—"तो क्या हुजूर ऐसे ही है। अपनी जान से बढ़कर इसकी सेवा करता हूँ। एक बखत अपने फाका भी हो जाय तो इसे भूखा थोड़े ही रख सकता हूँ। सीजन में अढ़ाई-तीन रुपया कमा देता है। तब इसे रोज़ आध पाव घी देता था। अब

भी डेढ़-दो कमाता है तो बारह आने रुपया इसे खिला देता हूँ। आठ आने का आजकल दो सेर दाना, एक छटांक घी और आध पाव गुड़। बाबू जी, तभी यह ऐसा बना है।.........!"

घोड़ा भी जैसे गोविन्द की बात समझता था। पक्की सड़क पर अपने सुमों की ताल दिखाने के लिये मटक-मटक कर चलने लगता। सवार की इच्छा न होने पर भी, बल्कि उस के भय को समझ खामुखाह तेज़ दुलकी या सरपट दौड़ने के लिए मुंह मारने लगता।

तीन जनवरी की रात वर्षा के कारण भीषण सर्दी हो गई। नारायण रजाई पर दो कम्बल डाल, सिकुड़ कर लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। होटल की टीन की छत पर बर्षा की बूंदों की गूंज सहसा कड़कड़ाहट में बदल गई। समझा, ओले हैं। इस विचार से ही सर्दी ज़्यादा मालूम होने लगी! बत्ती बुझा छत पर ओलों के मार की गूंज में आतंक मिली एक शान्ति की अनुभूति से वह आँखें मूँदे लेट गया। आँखें मूंदे ही सोच रहा था—प्रकृति अपनी सब शक्तियों से मनुष्य के प्राणों पर निर्मम आघात करती है फिर भी मनुष्य अपने जीवन की रक्षा करता ही है। ऐसे ही समाज की परिस्थितियाँ मनुष्य के मनुष्यत्व को हर कदम पर प्रताड़ित करती हैं फिर भी मनुष्य बने रहने का यत्न तो करता ही है.......। उसे नींद आ गयी।

दिन चढ़ा पर सूरज छिपा ही रहा। ठहर-ठहर कर वर्षा हो रही थी। नारायण बलाम से पहाड़ की चढ़ाई की कसरत के लिये न जा सका। दिन भर खिड़की के सामने बैठा, झील की ओर मुख किये कभी वह पुस्तक के पन्नों को देखता और कभी पहाड़ के ढलवानों और झील पर लुढ़कते रुई के गोलो जैसे बादलों को। नारायण मन की उदासी में उपन्यासों की रोचकता से खीझकर एक विचित्र-सी पुस्तक साथ लिये आया था और पढ़ रहा था......... सौन्दर्य की धारणा उससे प्राप्त होने वाले संतोष और तुष्टि पर निर्भर करती है।.....उसका तर्क कहने लगा इसका अर्थ हुआ, मनुष्य के हृदय की सम्पूर्ण विशालता उपयोगिता पर निर्भर करती है............यानि मनुष्य मूलतः स्वार्थी है। चोट चुपचाप सहने के अभिमान से भरा उसका मन इस पार्थिवता को स्वीकार करने के लिये तैयार न था।

दायें हाथ के अंगूठे को पुस्तक के पन्नों में और दूसरे हाथ के अंगूठे को दांतों

से दबाये वह अँधमुंदी आँखों मे पुस्तक की अपेक्षा अधिक रुचिकर, खिड़की से दिखाई देने वाले दृश्य को देख रहा था। सहसा कोहरा झील की सतह पर छा गया। पहाड़ की ढाल पर वृक्षों की आड़ से दिखाई देने वाले, बँगले कोठियाँ, झील की विस्तृत हरी नीली सतह और लहरों के थपेड़ों से हिलती छोटी-छोटी नावें सब एक धूमिल पर्दे में अदृश्य हो गयीं। होटल के सामने अत्यन्त समीप गिरजे की चोटी और सड़क भी उसी पर्दे में छिप गयी। फिर सहसा कोहरा डाकखाने के समीप के गलियारे मे नीचे लुढ़क चला।

पश्चिम में काठगोदाम के मैदान में जमे बादलों की ओट मे सूर्य की किरणें बादलों का पट चीरकर झांकने लगीं। वे वैसी ही मोहक और स्फूर्ति-दायक थीं जैसी चिक की ओट से झांकने वाली सहमी हुई आंखें। पूर्व में नयी बरफ का उज्ज्वल हीरक मुकुट पहने चीना-चोटी उभड़ आयी। सामने की ढाल पर लाल छतें दिखाई देने लगीं, उन पर आधी पिघली बरफ़ और भीगकर काले दिखाई पड़ने वाले वृक्षों की टहनियों पर लदी बरफ़ पश्चिम की ओर उतरते सूर्य की, बादलों से लुक-छिपकर आने वाली किरणों के स्पर्श से सिन्दूरी और नीली-धूमिल दिखाई देने लगी। हलकी-हलकी हवा चलने लगी। वृक्ष झूमने लगे और उनकी शाखाओं से बरफ़ झड़ने लगी। फिर शीघ्र ही सब कुछ स्पष्ट हो गया। झील की हरी-नीली सतह वायु के थपेड़ों से ढलमल करने लगी। झील के इस छोर से उस छोर तक फैली लहरें, एक के पीछे एक, समान अन्तर से, मल्लीताल से उठ तल्लीताल की ओर दौड़ने लगीं जैसे झील के विस्तृत केश-पाश की लहरों पर कङ्घियां चली जा रही हों!

अपने शरीर पर कम्बल लपेटते हुए नारायण सोचने लगा—और यदि कहा जाय कि इस सब सौन्दर्य का कोई पार्थिव मूल्य नहीं, इस से किसी का पेट नहीं भरता, तन नहीं ढकता इसलिये यह सौन्दर्य ही नहीं!............ छिः! कहकर उसने पुस्तक को नीचे नमदे पर पटक दिया।

झील-किनारे झूमते वृक्षों के नीचे सूनी, भीगी, बरफ़ से चित्रित सड़क पर गोविन्द अपने सुडौल घोड़े पर चौका भरते होटल की ओर चला आता दिखाई दिया। उस सर्दी और हवा में भी गोविन्द का सीना उभरा हुआ था। घोड़े और सवार की वह निर्भीक मुद्रा नारायण को बहुत भली मालूम हुई। उसे तेज़ी से अपनी ओर आते वह एकटक देखता रहा, क्या आनन्द ले रहा है जवान!

नारायण की खिड़की से कुछ कदम परे ही, घोड़े से उतर गोविन्द रास थामे खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ। उस तीखी ठण्डी हवा में बाहर निकलने को नारायण का मन न हुआ। घोड़े को देखकर भी वह कम्बल में लिपटा रहा।

ग्राहक को उठते न देख गोविन्द ने उसे सम्बोधन किया—"हुजूर, हवा खाने नहीं जायेगा ?"

नारायण मुस्करा दिया—"आज तुम खुद ही हवा खाओ !"

सिर लटका कर गोविन्द धीरे से बोला पर नारायण ने सुन लिया—"अरे साहब, हम गरीब लोग क्या हवा खायेगा !"

"क्यों ?'—नारायण ने पूछा, "तुम्हें हवा खाना अच्छा नहीं लगता ?" सिर कुछ ऊपर उठा निराशा के से स्वर में गोविन्द ने उत्तर दिया, "हमको तो खाने को अनाज ही नहीं मिलता, हम लोग हवा क्या खायेगा ?"

नारायण चुप हो गया, "यह सब अनुपम सौन्दर्य इसे सौन्दर्य नहीं जँच रहा ? वह बहुत देर तक सोचता रहा······उसे केवल रोटी का शौक है·······वह हवाख़ोर नहीं ?



शम्बूक

मुदगल नगरी में शूद्रों और दासो के विद्रोह के कारण विशृङ्खला और अराजकता फैल रही थी। अपना परम्परागत धर्म, द्विजों की सेवा छोड़ शूद्र और दास मुक्ति की कामना से तपस्या करने लगे।

महर्षि यज्ञाहुति के कर्म-काण्ड ज्ञान और निष्ठा का यश चारों दिशाओं में फैल रहा था। महर्षि का विश्वास मिथिलाधिपति 'विदेह' जनक के आत्म-वाद में हो गया। महर्षि ने ज्ञान लाभ किया—कर्म से फल और आसक्ति का अनिवार्य सम्बन्ध है। सुकर्म का फल, सुख भी अविनाशी आत्मा को जीवन की शृंखला में बाध कर उसे मोक्ष से दूर रखता है। शाश्वत आत्मा फल की इच्छा के बंधन से मुक्त होकर ही परमानन्द पा सकता है। उस का उपाय है, कर्म से निवृत्ति!

वे अपना आश्रम छोड़ कर्म से निवृत्ति के लिये एकान्त में चले गये।

महर्षि यज्ञाहुति का दास शम्बूक भी कर्म निवृत्ति से परमानन्द प्राप्ति का रहस्य जान मुदगल नगरी में आया। शम्बूक ने शूद्रों और दासों को उद्‌बोधन दिया—"अपनी परवशता के कारण शूद्र और दास इस लोक के सुख से वंचित हैं। यज्ञों के अनुष्ठान का साधन और अवसर न होने से वे परलोक की आशा नहीं कर सकते। उनके लिये सुख और मुक्ति का उपाय केवल कर्म निवृत्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति है।'

उसने कहा—"शूद्र और दास केवल भ्रम के कारण परवशता का दुख

भोगते हैं। आहार निद्रा, विश्राम और वांछित पदार्थों का न मिलना यह सब शारीरिक दुःख केवल भ्रम है। इस भ्रम को तप द्वारा प्राप्त ज्ञान के साधन से जीता जा सकता है।"

शम्बूक के ज्ञान-प्रचार और उपदेश से शूद्र और दास अपने द्विज स्वामियों के सेवा प्राप्त करने के अधिकार से विद्रोह कर बैठे। भोजन और दूसरे नितान्त आवश्यक पदार्थों का अभाव उन्हें सताने लगा। उन के मन डगमगाने लगे। शम्बूक ने उन्हें उपदेश दिया—"दुःख का यह अनुभव केवल भ्रम है। क्षुधा से अनुभव होने वाले दुःख का उपाय है कठोर तप से शरीर को वह दुःख अनुभव न होने देना।"

अभाव के दुःख से व्याकुल शूद्र लोग अग्नि ताप कर, शूलों पर लेटकर, शरीर में शूल गड़ाकर भ्रम से अनुभव होने वाले दुखों से ध्यान हटा कर मुक्ति का ज्ञान पाने की चेष्टा करने लगे।

मुद्गल का वर्णाश्रम समाज आवश्यक सेवा के अभाव में अपने धर्म, यज्ञ, व्रत, यम-नियम के पालन में असमर्थ हो गया। सब ओर पाप फैलने लगा।

महाज्ञानी ऋत्वक ऋषि उस समय कई दिन तक चलने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। अनेक समय से रोग-ग्रस्त उन का युवा पुत्र उन के दासों की परिचर्या में था। दासों के छोड़ जाने पर उनका रोगी पुत्र निराश्रय हो गया। पुत्र की चिन्ता से यज्ञ कार्य में लगे विप्र का मन उद्विग्न होने लगा—वे यज्ञ को अपूर्ण छोड़ने का पातक करें या रोगी, मृत्यु के भय से पीड़ित पुत्र की सेवा करें?

उन्होंने निश्चय किया—पुत्र, कलत्र, धन सम्पदा यह केवल इस लोक के साथी हैं। परलोक में केवल धर्म ही साथ जायगा। यह सब सांसारिक सुख पुण्य-कार्य का ही फल है इसलिये पहले पुण्य-कार्य ही सम्पन्न करना चाहिये।

यज्ञ समाप्त होने के साथ ही ऋत्वक का पुत्र उचित सेवा और परिचर्या न पा सकने के कारण मर गया। परमज्ञानी ऋषि पुत्र शोक के आघात से अधीर हो उठे। उन्हें मति विभ्रम होने लगा—क्या यज्ञ के पुण्य कार्य का फल उन्हें पुत्र शोक के रूप में मिला है? धर्म और भगवान के न्याय के प्रति उन्हें अविश्वास होने लगा।

पुत्र-शोक का भीषण उद्वेग कम होने पर महाज्ञानी वर्हि की मति स्थिर हुई। वे सोचने लगे—देवताओं का ऐसा भयंकर क्रोध बिना किसी महापाप के नहीं हो सकता। गूढ़ चिन्ता से उन्हें ज्ञान हुआ—वर्णाश्रम धर्म के ह्रास का महापाप चारों ओर अराजकता, अशान्ति और अन्याय फैलाये है। शूद्र और दास ब्राह्मणों और द्विजों के कर्म तपस्या द्वारा मुक्ति प्राप्ति का यत्न कर रहे हैं और ब्राह्मण शूद्रों के नीच कर्म करने के लिये बाध्य हैं। परम्परा का नियम भंगकर पृथ्वी को कंपा देने वाले इसी पाप के फल से पृथ्वी के देवता ब्राह्मण को युवा पुत्र का शोक हुआ। अपने निजी दुख को व्यापक रूप दे, वर्हि का हृदय इस पाप का प्रतिकार करने के लिये क्षुब्ध हो उठा।

महाज्ञानी वर्हि इस पाप की दुहाई देने भक्तवत्सल, रघुकुलसूर्य, भगवान् राम की शरण अयोध्या पहुँचे। क्षुब्ध ब्राह्मण के आगमन का समाचार सुन भगवान नंगे पांव दौड़े आये और हाथ जोड़ प्रार्थना की—"हे भूदेव, पृथ्वी पर तुम्हारा वचन ही धर्म और नियम है। तुम्हारे आशीर्वाद से ही क्षत्रिय राज्य-सत्ता प्राप्त कर धर्म और न्याय की रक्षा करते हैं।.........दास सेवा के लिये प्रस्तुत है।"

महाज्ञानी वर्हि से मुदगल नगरी में छाये महापातक और द्विजों के दुख का वृतान्त सुन भक्त-वत्सल राम पृथ्वी पर धर्म रक्षा के लिये तैयार हो गये और उन्होंने चतुरंगिनी सेना ले मुदगल नगरी के लिये प्रस्थान कर दिया।

शम्बूक के अनुयायी दास और शूद्र मुदगल नगर के समीप उपवन में एकत्र हो भाँति-भाँति के कठोर तपों द्वारा वासनाओं से ध्यान हटा रहे थे। शम्बूक एक गुफा में पंचाग्नि के केन्द्र में सिर नीचे और पाँव ऊपर कर वृक्षासन से तपस्या कर रहा था।

दुष्टों का दलन करने वाले भगवान राम के शूर सैनिकों ने उन मुक्ति की इच्छा करने वाले धर्मद्रोही शूद्रों को बन्दी बना एक मैदान में एकत्र कर दिया। भगवान राम हाथ में कृपाण ले शम्बूक की गुफा में गये और उसे सिर के केशों से खींचते हुये गुफा से बाहर निकाल लाये।

भय से काँपते हुये बन्दी शूद्रों और विस्मय से आँखें फैलाये, कर जोड़ कर खड़े द्विजों की श्रेणियों के सामुख भगवान ने शूद्रक को पटक दिया।

अपने पाँव पर खड़े हो शम्बूक ने देखा—आभापुंज, सर्वदुखहरण मोक्ष-दाता भगवान साक्षात् खड़े हैं। प्रसन्नता से उसके नेत्र चमक उठे—"मेरी तपस्या सफल हुई!"—शम्बूक ने कहा, "भगवान मुझे मुक्ति-दान दीजिये!"

राजीवलोचन राम के नेत्र क्रोध से रक्त वर्ण हो गये। उन्होंने शम्बूक की प्रताड़ना की—"मुक्ति धर्म ब्राह्मण का है, शूद्र का नहीं!"

"भगवान, न्याय!"—शम्बूक ने भिक्षा मांगी।

"स्वामी और ब्राह्मण का वचन ही न्याय है,—मेघ गर्जना से भगवान ने उत्तर दिया। उनका दायां हाथ कृपाण सहित शम्बूक के कंधे से ऊपर उठ गया।

शम्बूक के कातर नेत्र ऊपर उठे—"भगवान का क्या यही न्याय है?"—उसने क्षीण स्वर में प्रार्थना की।

भगवान का क्रोध बढ़ गया—"मूर्ख शूद्र, ब्राह्मण का वचन ही न्याय है!" उन्होंने गर्जन किया।

"तो फिर मुक्ति की भी इच्छा नहीं!"—शम्बूक ने सिर ऊँचा उठा लिया।

"महापातक"—भगवान के मुख से सक्रोध निकला और उनके हाथ का कृपाण शम्बूक के सिर को पृथ्वी पर गिरा नीचे आ गया।

भगवान ने आग्नेय नेत्रों से बन्दी शूद्रों की ओर देखा। वे लोग पृथ्वी पर सिर झुका, आधीनता से क्षमा याचना कर रहे थे।

पृथ्वी हिल उठी……।

कर जोड़ खड़े द्विजों की श्रेणी ने श्रद्धा से मस्तक झुका दिये। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद मंत्र का उच्चारण किया। उन्होंने कहा—"भगवान के न्याय से देवता प्रसन्न हुये और पृथ्वी पर धर्म की स्थापना हुई।"

भगवान राम के चरणारविंद में मन लगा विप्र और द्विज वर्णधर्म में संलग्न हो गये।

